द्वितीय अध्याय

सामाजिक-सांस्कृतिक उपन्यासों की पृष्ठभूमि

अध्याय-2

सामाजिक-सांस्कृतिक उपन्यासों की पृष्ठभूमि

2.1 हिंदी गद्य का विकास

2.1.1 आधुनिक काल के पूर्व गद्य की अवस्था

2.1.2 आधुनिक काल का गद्य

2.1.3 खड़ी बोली गद्य के विकास में भारतेन्दु का योगदान

2.1.4 खड़ी बोली गद्य के विकास में द्विवेदी जी का योगदान

2.2 हिंदी उपन्यास का विकास

2.2.1 'उपन्यास' शब्द का अर्थ एवं व्युत्पत्ति

2.2.2 उपन्यास का स्वरूप

2.2.3 उपन्यास की परिभाषा

2.2.4 उपन्यास के विविध प्रकार

2.2.4.1 अनूदित उपन्यास

2.2.4.2 तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास

2.2.4.3 जासूसी उपन्यास

2.2.4.4 सामाजिक उपन्यास

2.2.4.5 ऐतिहासिक उपन्यास

2.2.4.6 मनोवैज्ञानिक उपन्यास

2.2.4.7 आंचलिक उपन्यास

2.2.4.8 राजनीतिक उपन्यास

2.3 हिंदी उपन्यास के विकास के चरण

2.3.1 हिंदी का प्रथम उपन्यास

2.3.2 हिंदी उपन्यासों की पृष्ठभूमि

2.3.2.1 भारतेन्दुयुगीन उपन्यासों की पृष्ठभूमि

- प्रमुख उपन्यासकार

1. लाला श्री निवासदास
2. किशोरीलाल गोस्वामी
3. बालकृष्ण भट्ट
4. देवकीनंदन खत्री
5. गोपालराम गहमरी
6. मेहता लज्जाराम शर्मा
7. राधाकृष्णदास

8. ठाकुर जगमोहन सिंह

2.3.2.2 द्विवेदीकालीन उपन्यासों की पृष्ठभूमि

- प्रमुख उपन्यासकार

1. अयोध्यासिंह उपाध्याय
2. श्री लज्जाराम शर्मा
3. किशोरीलाल गोस्वामी
4. देवकीनन्दन खत्री
5. गोपालराम गहमरी
6. ब्रजनन्दन सहाय
7. दुर्गाप्रसाद खत्री
8. गंगाप्रसाद गुप्त

2.3.2.3 प्रेमचन्दकालीन उपन्यासों की पृष्ठभूमि

- प्रमुख उपन्यासकार

1. प्रेमचन्द
2. जयशंकर प्रसाद
3. विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'
4. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'
5. ऋषभचरण जैन

6. इन्द्र विद्यावाचस्पति

7. भगवतीचरण वर्मा

8. जैनेन्द्र कुमार

9. वृन्दावनलाल वर्मा

10. भगवतीप्रसाद वाजपेयी

11. सियारामशरण गुप्त

12. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

13. गोविन्दवल्लभ पंत

14. प्रतापनारायण श्रीवास्तव

2.3.2.4 प्रेमचन्दोत्तरकालीन उपन्यासों की पृष्ठभूमि

➢ प्रमुख उपन्यासकार

1. जैनेन्द्र कुमार

2. अज्ञेय

3. इलाचन्द्र जोशी

4. डॉ. देवराज

5. यशपाल

6. फणीश्वरनाथ 'रेणु'

7. उदयशंकर भट्ट

8. प्रभाकर माचवे

9. नागार्जुन

10. रामेश्वर शुक्ल ‘अचल’

11. प्रतापनारायण श्रीवास्तव

12. वृन्दावनलाल वर्मा

13. चतुरसेन शास्त्री

14. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी

15. राहुल सांकृत्यायन

16. राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह

17. भगवतीचरण वर्मा

18. डॉ. रांगेय राघव

19. राजेन्द्र यादव

अध्याय-2

सामाजिक-सांस्कृतिक उपन्यासों की पृष्ठभूमि

2.1 हिंदी गद्य का विकास

2.1.1 आधुनिक काल के पूर्व गद्य की अवस्थाः

आधुनिक काल के पूर्व हिंदी में गद्य रचनाएँ बहुलता से तो हुई लेकिन उनमें ज्यादा सौष्ठव नहीं रहा । फिर भी ब्रज भाषा में गद्य अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़ लिखा गया । इसका एक कारण यह भी था कि अपभ्रंश के बाद ब्रजभाषा ही ज्यादा प्रचलित और अंतर्प्रांतीय भाषा थी । भाषा इतिहास की दृष्टि से नाथ पंथियों में कई ग्रंथ मिलते हैं जिनमें गद्य का रूप मिलता है । जिसके दो स्वरूप पाए जाते हैं - टीका और वार्ता । ये साम्प्रदायिक ग्रंथ हैं - गोकुलनाथ कृत 'कथित चौरासी वैष्णवों की वार्ता' और 'दौसो बावन वैष्णवों की वार्ता ।' इनका रचना काल सत्रहवीं शताब्दी में कहीं माना जाता है । "आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसे श्री गोकुलनाथ के किसी शिष्य द्वारा लिखा मानते हैं ।"[1]

उनके पूर्व 'श्रृंगार मंडन' नामक एक ग्रंथ भी लिखा गया लेकिन शुक्लजी इसकी भाषा को अव्यवस्थित मानते हैं । भाषा में ही टीकाओं और रीतिग्रंथों के रूप में भी रचनाएँ मिलती हैं । इस कथा साहित्य की चर्चा करने का अर्थ यह कतई नहीं है कि इसे उपन्यास परंपरा से जोड़ा जा रहा है और न ही जोड़ा जा सकता है । यह उस पृष्ठभूमि और परंपरा या पूर्व पीठिका का अवलोकन भर है

जो आधुनिक भारतीय गद्य साहित्य से पूर्ववर्ती प्राचीन काल में मौजूद थी । आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने नाभादास कृत 'अष्टयाम' और बैकुण्ठमणि शुक्ल कृत 'अगहन माहात्म्य' का जिक्र भी किया है । इसके अतिरिक्त सूरति मिश्र ने 'आईने अकबरी की भाषा वचनिका' नाम की एक बड़ी रचना का भी जिक्र किया है । लेकिन गद्य का सम्यक प्रचार न होने के कारण ब्रज भाषा की यह विधा जहाँ की तहाँ रह गई । मध्यकालीन युग में कथा का उपयोग पुराणों, आख्यानों आदि के लिए किया जाता था । धार्मिकेत्तर साहित्य के लिए भी किया जाता था । 'मृगावती की कथा', 'सत्यवती की कथा', 'मकरध्वज की कथा', 'सिंहासन बतीसी की कथा' आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं ।

उपन्यास की परंपरा का मेल इन प्रेमाख्यानों से काफी कुछ मिलता जुलता सा प्रतीत होता है । कुछ विद्वानों का मत है कि - "इसे ही उपन्यास का प्राचीनतम रूप समझना चाहिए । यदि आध्यात्मिकता का पुट न होता तो इसे हम रोमांस कह सकते थे ।"[2]

ब्रजभाषा के अतिरिक्त अवधी भाषा में भी गद्य रचनाएँ बहुत कम लिखी गई । कुछ रचनाएँ खड़ी बोली मिश्रित अवधी में मिलती हैं । इन ग्रंथों में महंत रामचरण दास का 'मानस टीका' विशेष महत्वपूर्ण है लेकिन यह गद्य अपुष्ट है । राजस्थानी में गद्य परंपरा प्राचीन है । राजस्थानी में जैनियों का अमूल्य सहयोग रहा है । राजस्थानी भाषा की तरह मैथिली भाषा में भी गद्य की परंपरा प्राचीन काल से ही है । कथा नाटक या तो गद्य में लिखे गए या गद्य-

पद्य मिश्रित रचनाएँ हैं । 'वर्णरत्नाकर' की रचना कवि ज्योतिश्वर ठाकुर द्वारा चौदहवीं शताब्दी में की गई । इस भाषा के गद्य में संस्कृतनिष्ठता ज्यादा पायी जाती है ।

अरबी, फारसी, ब्रज, खड़ी बोली, मराठी, तेलुगु आदि भाषा के मिश्रण से उत्पन्न दक्खिनी हिंदी में गद्य का प्रारंभ चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में कथात्मक और व्यवहारिक रूप में उपलब्ध होता है ।

अतः स्पष्ट है कि जिस समय गद्य के लिए खड़ी बोली उठ खड़ी हुई उस समय तक गद्य का विकास नहीं हुआ था, उसका कोई साहित्य नहीं खड़ा हुआ था, इसी से खड़ी बोली के ग्रहण में कोई संकोच नहीं हुआ ।

2.1.2 आधुनिक काल का गद्य

आधुनिक काल को खड़ी बोली गद्य का विकास काल भी कहा जाता है । भारतेन्दु से पूर्व हिंदी खड़ी बोली का गद्य किस प्रकार विकसित हुआ उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है ।

खड़ी बोली में गद्य का प्रारंभ तो मुगल बादशाह अकबर के शासन काल में ही हो गया था । अकबर के समय में गंग कवि ने 'चंद छंद बरनन की महिमा' नामक एक गद्य पुस्तक खड़ी बोली में लिखी थी उसकी भाषा का नमूना देखिए -

''सिद्ध श्री श्री नातसाहि जी श्री दलपति जी अकबरसाहजी आमखास में तखत ऊपर विराजमान हो रहे हैं । और आमखास भरने लगा है जिसमें तमाम उमराव आय आय कुर्निश बजाय जुहार करके अपनी-अपनी बैठक पर बैठ जाया करे अपनी-अपनी मिसल से । जिनकी बैठक नहीं सो रेसम के रस्से में रेसम की लूमें पकड़ के खड़े ताजीम में रहे ।''[3]

इस अवतरण से स्पष्ट लगता है कि अकबर और जहाँगीर के समय में ही खड़ी बोली भिन्न-भिन्न प्रदेशों में शिष्ट समाज के व्यवहार की भाषा हो चली थी । यह भाषा उर्दू नहीं कही जा सकती यह हिंदी खड़ी बोली है । यद्यपि पहले साहित्य भाषा के रूप में स्वीकृति न होने के कारण इसमें अधिक रचना नहीं पायी जाती पर यह बात नहीं है कि इसमें ग्रंथ लिखे ही नहीं जाते थे । दिल्ली राजधानी होने के कारण जब से शिष्ट समाज के बीच इसका व्यवहार बढ़ा तभी से इधर-उधर कुछ पुस्तकें इस भाषा के गद्य में लिखी जाने लगीं ।

विक्रम संवत 1798 में रामप्रसाद 'निरंजनी' ने भाषा 'योगवासिष्ठ' नाम का ग्रंथ साफ सुथरी खड़ी बोली में लिखा । ये पटियाला दरबार में थे और महारानी को कथा पढ़कर सुनाया करते थे । इनके ग्रंथ को देखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि -

''मुंशी सदासुख और लल्लूलाल से बासठ वर्ष पहले खड़ी बोली का गद्य अच्छे परिमार्जित रूप में पुस्तक आदि लिखने में व्यवहृत होता था । अब तक पाई गयी पुस्तकों में यह 'भाषा योगवासिष्ठ' ही सबसे पुराना है जिसमें गद्य

अपने परिष्कृत रूप में दिखाई पड़ता है । अतः जब तक और कोई पुस्तक इससे पुरानी न मिले तब तक इसी को परिमार्जित गद्य की प्रथम पुस्तक और रामप्रसाद 'निरजनी' को प्रथम प्रौढ़ गद्यलेखक मान सकते हैं ।''[4]

'निरजनी' के गद्य 'भाषा योगवसिष्ठ' का एक उदाहरण इस प्रकार है-

''हे रामजी ! जो पुरुष अभिमानी नहीं हैं वह शरीर के इष्ट-अनिष्ट में राग-द्वेष नहीं करता क्योंकि उसका शुद्ध वासना है । मलीन वासना जन्मों का कारण है । ऐसी वासना को छोड़कर जब तक स्थित होंगे तब तुम कर्ता होते हुए भी निर्लेप रहोगे और हर्ष, शोक आदि विकारों से जब तुम अलग रहोगे तब वीतराग, भय, क्रोध से रहित रहोगे +++ जिसने आत्मतत्त्व पाया है वह जैसे स्थित हों वैसे ही तुम भी स्थित हो । इसी दृष्टि को पाकर आत्मतत्व को देखो तब विगतज्वर होंगे और आत्मपद को पाकर फिर जनम-मरण के बंधन में न आओगे ।''[5]

इसके बाद संवत 1818 में बसवा निवासी प. दौलतराम ने हरिषेणाचार्य कृत 'जैन पद्मपुराण' का भाषानुवाद किया जो 700 पृष्ठों से ऊपर का एक बड़ा ग्रंथ है । परंतु इसकी भाषा उपर्युक्त 'भाषा योगवासिष्ट' के समान परिमार्जित नहीं है पर इस बात का पूरा पता देती है कि फारसी उर्दु से कोई संपर्क न रखनेवाली अधिकांश शिष्ट जनता के बीच खड़ी बोली किसी स्वाभाविक रूप में प्रचलित थी । जिस समय अंग्रेजी राज्य भारत में प्रतिष्ठित हुआ उस समय सारे उत्तरी भारत में खड़ी बोली व्यवहार की शिष्ट भाषा हो चुकी थी । जिस

प्रकार उसके उर्दू कहलाने वाले कृत्रिम रूप का व्यवहार मौलवी मुंशी आसी फारसी तालीम पाये हुए कुछ लोग करते थे । उसी प्रकार उसके असली स्वाभाविक रूप का व्यवहार हिंदू, साधु, पंडित, महाजन आदि अपने शिष्ट भाषण में करते थे । जो संस्कृत पढ़े-लिखे या विद्वान होते थे उनकी बोली में संस्कृत के शब्द भी मिले रहते थे ।

अंग्रेज यद्यपि विदेशी थे पर उन्हें स्पष्ट लक्षित हो गया कि जिसे उर्दू कहते हैं वह न तो देश की स्वाभाविक भाषा है, न उसका साहित्य देश का साहित्य, जिसमें जनता के भाव और विचार रक्षित हों । अंग्रेजों को जब इस बात की आवश्यकता महसूस हुई कि यहाँ के लोगों से सम्पर्क के लिए लोक भाषा की आवश्यकता है तब वे उर्दू और हिंदी (खड़ी बोली) गद्य की खोज में पड़े । उस समय गद्य की पुस्तकें वास्तव में न उर्दू में थी न हिंदी में । जिस समय संवत 1860 में फोर्ट विलियम कॉलेज की ओर से दोनों भाषा में पुस्तकें लिखने की व्यवस्था हुई उसके पहले हिंदी खड़ी बोली में गद्य की कई पुस्तकें लिखी जा चुकी थी ।

भाषा 'योगवासिष्ठ' और 'पद्मपुराण' का उल्लेख तो हम कर चुके हैं । उसके उपरान्त जब ''अंग्रेजों की ओर से पुस्तकें लिखने की व्यवस्था हुई उसके दो-एक वर्ष पहले ही मुंशी सदा सुख की 'ज्ञानोपदेशवाली' पुस्तक और इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' लिखी जा चुकी थी । अतः यह कहना कि अंग्रेजों की प्रेरणा से ही हिंदी खड़ी बोली का प्रादुर्भाव हुआ, ठीक नहीं है।''[6]

जिस समय दिल्ली के उजड़ने के कारण उधर के हिन्दू व्यापारी तथा अन्य वर्ग के लोग जीविका के लिए देश के भिन्न-भिन्न लोगों में फैल गये और खड़ी-बोली अपने स्वाभाविक देशी रूप में शिष्टों की बोलचाल की भाषा हो गयी उसी समय लोगों का ध्यान उसमें गद्य लिखने की ओर गया । तब तक हिंदी और उर्दू दोनों का साहित्य पद्यमय ही था । हिंदी कविता में परंपरागत काव्यभाषा, ब्रजभाषा का व्यवहार चला आता था और उर्दू कविता में खड़ी बोली के साथ अरबी-फारसी मिश्रित था । जब खड़ी बोली अपने असली रूप में भी चारों ओर फैल गयी तब उसकी व्यापकता और भी बढ़ गयी और हिंदी गद्य के लिए उसके ग्रहण में सफलता की संभावना दिखाई पड़ी ।

"इसीलिए जब संवत 1860 में फोर्ट विलियम कॉलेज (कलकत्ता) के हिंदी-उर्दू अध्यापक जॉन गिलक्राइस्ट ने देशी भाषा की गद्य पुस्तकें तैयार कराने की व्यवस्था की तब उन्होंने उर्दू और हिंदी दोनों के लिए अलग-अलग प्रबंध किया । इसका मतलब यही है कि उन्होंने उर्दू से स्वतंत्र हिंदी खड़ी बोली का अस्तित्व भाषा के रूप में पाया ।"[7]

फोर्ट विलियम कॉलेज के आश्रय में लल्लूलालजी गुजराती ने खड़ी बोली के गद्य में 'प्रेमसागर' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा । अतः खड़ी बोली गद्य को एक साथ आगे बढ़ाने वाले चार महानुभाव हुए हैं - मुंशी सदासुख लाल, सैयद इंशाअल्ला खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र । ये चारों लेखक संवत 1850 के आसपास हुए । इनका हम संक्षिप्त में वर्णन करेंगे ।

1 मुंशी सदासुखलाल 'निवाज' (संवत 1803-1881)

ये दिल्ली के रहने वाले थे । संवत 1850 के लगभग ये कंपनी की अधीनता में चुनार (जिला मिर्जापुर) में एक अच्छे पद पर थे । इन्होंने उर्दू और फारसी में बहुत-सी किताबें लिखी हैं और काफी शायरी की है । अपनी 'मुतखबुत्तवारीख' में अपने संबंध में इन्होंने जो कुछ लिखा है उससे पता चलता है कि 65 वर्ष की अवस्था में ये नौकरी छोड़कर प्रयाग चले गये और अपनी शेष आयु वहीं हरिभजन में बितायी । उक्त पुस्तक संवत 1875 में समाप्त हुई । इन्होंने 'श्रीमद्भागवत' का अनुवाद 'सुखसागर' नाम से किया । इन्होंने 'विष्णु पुराण' से कोई उपदेशात्मक प्रसंग लेकर एक पुस्तक लिखी थी, जो पूरी नहीं मिली है । कुछ दूर तक सफाई से चलने वाला गद्य जैसा 'भाषा योगवासिष्ठ' का था वैसा मुंशीजी की इस पुस्तक में दिखाई पड़ा । उसका थोड़ा-सा अंश नीचे उद्धृत किया जाता है -

"इससे जाना गया कि संस्कार का भी प्रमाण नहीं, आरोपित उपाधि है । जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष से चांडाल से ब्राह्मण हुए और क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरंत ही ब्राह्मण से चांडाल होता है । यद्यपि ऐसे विचार से हमें लोग नास्तिक कहेंगे, हमें इस बात का डर नहीं । जो बात सत्य होय उसे कहना चाहिए कोई बुरा माने कि भला माने । विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका (जो) सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो........"[8]

इन्होंने भाषा में कहीं-कहीं संस्कृत के तत्सम शब्दों के अतिरिक्त फारसी व्याकरण का भी प्रभाव ग्रहण किया । इनकी गद्य शैली कथावाचक पण्डितों जैसी ही है ।

2 इंशा अल्ला खाँ (संवत 1815)

इनका जन्म मुर्शिदाबाद में हुआ । इनके पिता का नाम मीर आशा अल्ला खां था । वे दिल्ली में शाहआलम द्वितीय के दरबार में भी रहे और बाद में लखनऊ के नवाब सआदत अली खाँ के दरबार में भी रहे । ये उर्दू और फारसी के बड़े अच्छे जानकार थे । इन्होंने उर्दू में बहुत अच्छी शायरी भी की । इन्होंने संवत 1855 तथा संवत 1860 के बीच 'उदयभानचरित' और 'रानी केतकी की कहानी' लिखी । 'रानी केतकी की कहानी' किस उद्देश्य से लिखी थी इस विषय में 'शुक्ल' जी ने लिखा है -

"इस से स्पष्ट है कि इंशा का उद्देश्य ठेठ हिंदी लिखने का था जिससे हिंदी को छोडकर और किसी बोली का पुट न रहे ।"[9]

भाषापन से अभिप्रायः संस्कृत मिश्रित हिंदी से था । इन्होंने अरबी, फारसी, संस्कृत तथा ब्रज एवं अवधी के शब्दों को यथासंभव दूर रखने का प्रयत्न किया है । इनकी भाषा प्रवाहयुक्त, चटपटी तथा चलती हुई है । मुहावरों तथा घरेलू शब्दों का प्रयोग है । आरम्भिक हिन्दुस्तानी भाषा के सुन्दर उदाहरण इनकी गद्य भाषा में मिल जाते हैं ।

3 लल्लूलालजी (जन्म संवत 1820 मृत्यु संवत 1882)

ये आगरा के रहने वाले गुजराती ब्राह्मण थे । ये संस्कृत भाषा के इतने अच्छे नहीं पर उर्दू के अच्छे विद्वान थे । फोर्ट विलियम कॉलेज में नियुक्ति के बाद संवत 1881 में इन्होंने 'भागवतपुराण' के दशम स्कन्ध का अनुवाद 'प्रेमसागर' नाम से किया । इसके अतिरिक्त इन्होंने 'सिंहासन बत्तीसी' तथा 'बेताल पच्चीसी' आदि की रचना की। इनकी भाषा कृष्णोपासक व्यासों की सी ब्रजरंजित खड़ी बोली है। वाक्य विन्यास बड़ा है तथा मुहावरों का कम प्रयोग है।

4 सदल मिश्र

ये भी फोर्ट विलियम कॉलेज में काम करते थे । ये बिहार के निवासी थे। इनका 'नासिकेतोपाख्यान' भी उसी समय लिखा गया जिस समय 'प्रेमसागर'। हिंदी खड़ी बोली के आरम्भिक प्रयोक्ताओं में इनका नाम भी आदर से लिया जाता है । इनकी भाषा में अवधी तथा ब्रज भाषा के प्रभाव को भी देखा जा सकता है जैसे पाय, जाय, बिन आदि । गद्य भाषा में कुछ पूर्वीपन भी है जोन, इहां, जुदाई आदि शब्द मिलते हैं । फिर भी इन्होंने हिंदी खड़ी बोली को व्यवहार की भाषा बनाने की दिशा में सराहनीय योगदान दिया है।

अतः यह कहा जा सकता है कि आरम्भिक खड़ी बोली गद्य साहित्य को जन्म देने वाले उपर्युक्त यह चार महानुभाव ही हैं । यद्यपि ये चारों समकालीन थे तथापि इन चारों की गद्य भाषा में अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं जैसे

सदासुखलाल की भाषा में कुछ पण्डिताऊपन है परंतु इन्शा अल्ला खाँ की भाषा शुद्ध हिन्दवी का रूप लिए है । हाँ, वाक्य विन्यास पर फारसी शैली का प्रभाव अवश्य है । लल्लूलालजी की भाषा में ब्रज भाषा का कुछ पुट या मिश्रण है । मुन्शी जी की भाषा में खड़ी बोली का रूप अधिक निखरा हुआ मिलता है । पर उसमें कुछ बिहारीपन दिखाई पड़ता है । इन चारों में गद्य प्रवर्तक किसे माना जाये, इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यता इस प्रकार है-

"गद्य की एक साथ परंपरा चलाने वाले उपर्युक्त चार लेखकों में से आधुनिक हिंदी का पूरा-पूरा आभास मुंशी सदासुखलाल और सदल मिश्र की भाषा में ही मिलता है। व्यवहारोपयोगी इन्हीं की भाषा ठहरती है । इन दो में मुंशी सदासुख की साधु भाषा अधिक महत्त्व की है । मुंशी सदासुख ने लेखनी भी चारों में पहले उठायी अतः गद्य का प्रवर्तन करने वालों में उनका विशेष स्थान समझना चाहिए ।"[10]

इसके अतिरिक्त भारतेन्दु पूर्व के युग में शिवप्रसादजी जिन्होंने हिंदी और उर्दू में 'राजा भोज का सपना' 'मानवधर्मसार' आदि मिलाकर बत्तीस पुस्तकें लिखी। इनका सबसे बड़ा योगदान रहा । देश के तमाम स्कूलों में हिंदी की पाठ्यपुस्तकें तैयार करवाकर उन्हें शिक्षा के तौर पर चलवाया । तत्पश्चात् असली हिंदी का नमूना लेकर उस समय राजा लक्ष्मण सिंह ही आगे बढ़े । उन्होंने संवत 1918 में 'प्रजाहितैषी' नाम का एक पत्र आगरा से निकाला और 1919 में 'अभिज्ञान शाकुंतल' का अनुवाद बहुत ही सरल और शुद्ध हिंदी में

प्रकाशित किया । इस पुस्तक की प्रशंसा हुई और भाषा के संबंध में मानो फिर से लोगों की आँख खुली । राजा लक्ष्मण सिंह ने उस समय इस प्रकार की भाषा जनता के सामने रखी उसका उदाहरण देखिए-

"अनसूया (हौले प्रियंवदा से) सखी! मैं भी इसी सोच में हूँ । अब इससे कुछ पूछूँगी । (प्रगट) महात्मा ! तुम्हारे मधुर वचनों के विश्वास में आकर मेरा जी यह पूछने को चाहता है कि तुम किस राजवंश के भूषण हो और किस देश की प्रजा को विरह में व्याकुल छोड़ यहाँ पधारे हो ? क्या कारण है ? जिससे तुमने अपने कोमल गात को कठिन तपोवन में आकर पीड़ित किया है ?"[11]

यह भाषा ठेठ और सरल होते हुए भी साहित्य में चिरकाल से व्यवहृत संस्कृत में कुछ रसिक शब्द दिये हुए हैं । इसमें उर्दू शब्द का प्रयोग नहीं के बराबर है । डॉ. संकठाप्रसाद मिश्र का मत है कि - ''संवत 1860 के लगभग फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता के आश्रय में लल्लूलालजी ने खड़ी बोली के गद्य 'प्रेमसागर' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा । अतः खड़ी बोली के गद्य को एक साथ आगे लाने वाले चार व्यक्ति थे, मुंशी सदासुख लाल, सैयद इंशा अल्ला खाँ, लल्लूलालजी और सदल मिश्र । बाद में राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' तथा राजा लक्ष्मणसिंह ने हिंदी गद्य के विकास में पर्याप्त योगदान दिया ।''[12]

खड़ी बोली गद्य को निर्मित एवं विकसित करने में आर्य समाज का भी बड़ा भारी योगदान है । स्वामी जी ने संवत 1922 में ‘आर्य समाज’ की स्थापना की और सब आर्य समाजियों के लिए हिंदी या आर्यभाषा का पढ़ना आवश्यक ठहराया । आर्य समाज का प्रभाव सबसे अधिक पंजाब पर पड़ा । इसलिए पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी ने हिंदी के कई ग्रंथ लिखे । हिंदी के अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत, पंजाबी और उर्दू में भी रचनाएँ लिखीं। ‘भाग्यवती’ नाम का एक सामाजिक उपन्यास भी सन् 1934 में उन्होंने लिखा, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई । जिसे हिंदी का पहला उपन्यास माना जाता है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे । समवेत इसी समय हिंदी की पत्रिकाएँ भी निकलने लगी थीं। यद्यपि भारतेन्दु पूर्व गद्य की भाषा व्यवस्थित नहीं थी फिर भी इस काल के योगदान को कम करके नहीं आंका जा सकता है ।

राजा लक्ष्मणसिंह के समय में ही हिंदी गद्य की भाषा अपने भावी रूप का आभास दे चुकी थी । अब आवश्यकता ऐसे शक्तिसंपन्न लेखकों की थी जो अपनी प्रतिभा और उद्भावना के बल से उसे सुव्यवस्थित और परिमार्जित करते और उसमें ऐसे साहित्य का विधान करते जो शिक्षित जनता की रुचि के अनुकूल होता ठीक इसी परिस्थिति में भारतेन्दु का उदय हुआ ।

2.1.3 खड़ी बोली गद्य के विकास में भारतेन्दु का योगदान

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र खड़ी बोली गद्य के प्रमुख उन्नायक थे । उनसे पूर्व भी हिंदी गद्य का निर्माण हुआ । रामप्रसाद 'निरंजनी', इंशाअल्ला खाँ, लल्लूलाल, सदासुखलाल, सदल मिश्र, स्वामी दयानन्द, श्रद्धाराम फिल्लौरी, राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द', राजा लक्ष्मण सिंह आदि ने निःसंदेह हिंदी गद्य की महती सेवाएँ की हैं, परन्तु इन लेखकों का गद्य किसी एक निश्चित दिशा की ओर उन्मुख न था । कुछ लेखक इसे ब्रजभाषा की ओर खींच रहे थे, तो कुछ उसे उर्दूमय बनाना चाहते थे तथा अन्य उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की भरमार कर रहे थे । मतलब यह कि भारतेन्दु से पूर्व हिंदी गद्य का विकास निश्चित और स्वस्थ रूप में न था और दूसरे, उसमें धार्मिक ग्रन्थों की ही प्रधानता थी, शुद्ध साहित्यिक गद्य का निर्माण नहीं हुआ था । ऐसी अवस्था में हम भारतेन्दु पूर्व गद्य को प्रस्ताव काल मात्र कह सकते हैं । इस समय गद्य को अनिश्चितता की दलदल से निकालकर इसे निश्चित मार्ग पर आरूढ़ करने की आवश्यकता थी, इसी अधूरे काम को पूरा करने का आरंभ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया । आचार्य शुक्ल जी लिखते हैं –

''भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का प्रभाव भाषा और साहित्य दोनों का बड़ा गहरा पड़ा । उन्होंने जिस प्रकार गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत चलता, मधुर और स्वच्छ रूप दिया, उसी प्रकार हिंदी साहित्य को भी नये मार्ग

पर लाकर खड़ा कर दिया । उनके भाषा संस्कार की महत्ता को सब लोगों ने मुक्तकंठ से स्वीकार किया और वे वर्तमान हिंदी गद्य के प्रवर्तक माने गये।''[13]

इससे भी बड़ा काम उन्होंने यह किया कि साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और वे उसे शिक्षित जनता के साहचर्य में ले आये । नयी शिक्षा के प्रभाव से लोगों की विचारधारा बदल चली थी । उनके मन में देशहित, समाजहित आदि की नयी उमंगें उत्पन्न हो रही थीं । काल की गति के साथ-साथ उनके भाव और विचार तो बहुत आगे बढ़ गये थे, पर साहित्य पीछे ही पड़ा था । भक्ति, श्रृंगारादि की पुराने ढंग की कविताएँ ही होती चली आ रही थीं । बीच-बीच में कुछ शिक्षा संबंधित पुस्तकें अवश्य निकल जाती थीं, पर देश काल के अनुकूल साहित्य निर्माण का कोई विस्तृत प्रयत्न तब तक नहीं हुआ था । बंग देश में नए ढंग के नाटकों और उपन्यासों का आरंभ हो चुका था जिनमें देश और समाज की नयी रुचि और भावना का प्रतिबिंब आने लगा था। हिंदी साहित्य अपने पुराने रास्ते पर ही पड़ा था । भारतेन्दु ने उस साहित्य को दूसरी ओर मोड़कर जीवन के साथ फिर से लगा दिया । इस प्रकार हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद पड़ रहा था उसे उन्होंने दूर किया । हमारे साहित्य को नये-नये विषयों की ओर प्रवृत्त करने वाले हरिश्चंद्र ही हुए ।

आधुनिक गद्य साहित्य की परंपरा का आरंभ नाटकों से हुआ । भारतेन्दु ने सबसे पहले 'विद्यासुंदर' नाटक का बंगला से सुंदर हिंदी में अनुवाद करके

संवत 1925 में प्रकाशित किया । भारतेन्दु ने मौलिक एवं अनूदित दोनों प्रकार के नाटक रचे । इनके प्रसिद्ध नाटक हैं - 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'चन्द्रावली', 'अन्धेर नगरी' आदि । इनके साथ के लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी और गोपालराम गहमरी अधिक प्रसिद्ध हैं ।

भारतेन्दु के समय में धूम से चली हुई नाटकों की यह परंपरा आगे चलकर बहुत शिथिल पड़ गयी । बाबू रामकृष्ण वर्मा बंग भाषा के नाटकों का जैसे, 'वीर नारी', 'पद्मावती', 'कृष्णकुमारी'–अनुवाद करके नाटकों का सिलसिला कुछ चलाते रहे। इसका कारण बताते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने लिखा है–

''नाटकों और निबंधों की ओर विशेष झुकाव रहने पर बंगभाषा की देखादेखी नये ढंग के उपन्यासों की ओर भी ध्यान जा चुका था ।'' [14]

नाटकों के समान भारतेन्दु ने निबंध – लेखन का भी श्री गणेश किया । ''कुछ लोग 'सुरासुर निर्णय' (सदासुखलाल) को हिंदी का पहला निबंध मानते हैं परन्तु आधुनिक निबंध परंपरा का सूत्रपात भारतेन्दु से मानना ही अधिक संगत है ।'' [15]

उनके निबंधों का क्षेत्र विस्तृत था । साहित्य, समाज, राजनीति, इतिहास, यात्रा आदि विविध विषयों पर युगानुकूल विचार भारतेन्दु ने अपने निबंधों में प्रकट किए हैं । सामाजिक कुरीतियों का विरोध तथा विदेशी राज्य पर व्यंग्य

उनके निबंधों में देखने को मिलता है । 'नाटक' नाम से इनका एक विस्तृत आलोचनात्मक निबंध है । 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' इनका हास्य व्यंग्यप्रधान निबंध है । भारतेन्दु के निबंधों में जिन्दादिली, सजीवता, व्यंग्यात्मकता और आत्मीयता विद्यमान है । जहाँ तक भाषा के सामान्य स्वरूप का प्रश्न है, यह निर्विवाद है कि उसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा स्थिर किया जा चुका था । इस संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने लिखा है –

''जब भारतेन्दु अपनी भेजी हुई परिष्कृत भाषा सामने लाये तब हिंदी बोलने वाली जनता को गद्य के लिए खड़ी बोली का प्रकृत साहित्य रूप मिल गया और भाषा के स्वरूप का प्रश्न न रह गया । प्रस्तावकाल समाप्त हुआ और भाषा का स्वरूप स्थिर हुआ।''[16]

भाषा का स्वरूप स्थिर हो जाने पर साहित्य की रचना कुछ विस्तार में हो लेती है तभी शैलियों का भेद, लेखकों की व्यक्तिगत विशेषताएँ आदि लक्षित होती हैं । भारतेन्दु के प्रभाव से उनके अल्प जीवनकाल के बीच ही लेखकों का एक खासा मंडल तैयार हो गया जिसके अंतर्गत पं. प्रतापनारायण मिश्र, उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहन सिंह, पं. बालकृष्ण भट्ट के नाम मुख्य रूप से आते हैं । इन लेखकों की शैलियों में व्यक्तिगत भिन्नता स्पष्ट लक्षित हुई हैं । भारतेन्दु के गद्य में व्यंग्य और हास्य का समिश्रण है । कहीं-कहीं ब्रज भाषा के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग है । जैसे अचरज, चातुरी

आदि। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने उनकी गद्‌य शैली के दो रूप लक्षित किये हैं – एक उनकी भावावेश शैली और दूसरी तथ्यनिरूपण की शैली । इन दोनों शैलियों के अतिरिक्त विचारप्रधान शैली, व्यंग्य-विनोदशैली, उद्‌बोधन शैली आदि भी उनके गद्‌य में लक्षित होती है । हिंदी-प्रदेश की मूल चेतना से जुड़ा होने के कारण ही उनका गद्‌य सर्वमान्य हुआ । उनकी भावावेश की शैली का एक उदाहरण देखिए-

''झूठे-झूठे झूठे ! झूठे ही नहीं विश्वासघातक ! क्यों इतना छाती ठोक कर और हाथ उठा उठाकर लोगों को विश्वास दिया ? आप ही सब मरते, चाहे जहन्नुम में पड़ते । भला क्या काम था कि इतना पचड़ा किया ? किसने उपद्रव और जाल करने को कहा था ? कुछ न होता, तुम्हीं तुम रहते, बस चैन था केवल आनंद था ।'' [17]

इसके अतिरिक्त भारतेन्दु के समकालीन लेखकों की गद्‌य शैली के संदर्भ में शुक्ल जी ने लिखा है-

''हरिश्चन्द्रकाल के सब लेखकों में अपनी भाषा की प्रकृति की पूरी परख थी । संस्कृत के ऐसे शब्दों और रूपों का व्यवहार करते थे जो शिष्ट समाज के बीच प्रचलित चले आते हैं । जिन शब्दों या उनके जिन रूपों से केवल संस्कृतभाषी ही परिचित होते हैं और जो भाषा प्रवाह के साथ ठीक चलती नहीं, उनका प्रयोग बहुत औचट में पड़कर ही करते थे । उनकी लिखावट में न

‘अड्डीयमान’ और ‘अवसाद’ ऐसे शब्द मिलते हैं, न ‘औदार्य’, ‘सौकार्य’ और ‘मौर्ख्य’ ऐसा रूप ।’’ [18]

भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखकों ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी हिंदी गद्य को विकास प्रदान किया । भारतेन्दुकाल में पच्चीस के लगभग पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं । इनसे निबंध-लेखन को विशेष रूप से प्रोत्साहन प्राप्त हुआ । भारतेन्दु ने स्वयं ‘कविवचन सुधा’, ‘बाल-बोधिनी’ तथा ‘हरिश्चन्द्र मैगज़ीन’ नाम से तीन पत्रिकाओं का प्रकाशन किया ।

गद्य के अन्य रूप, नाटक, निबंध, उपन्यास, यात्रावर्णन, जीवनी-चरित्र कहानी आदि उन्होंने लिखे । उनके सहयोगियों ने भी अपने ढंग से उनका हाथ मजबूत किया । ‘‘भारतेन्दु सही अर्थ में आधुनिक हिंदी गद्य के जन्मदाता है।’’[19] उपरोक्त वाक्य डॉ. बच्चनसिंह ने उनके लिए सही लिखा है ।

2.1.4 खड़ी बोली गद्य के विकास में द्विवेदी जी का योगदान

हिंदी गद्य के विकास में भारतेन्दु के अतिरिक्त द्विवेदी जी का भी योगदान रहा है । ‘‘भारतेन्दु ने गद्य की भाषा को जो स्थिर रूप दिया था, वह केवल इने-गिने लेखकों तक ही सीमित रहा, सर्वसाधारण में उसका प्रचार न हो सका। इन लेखकों का विषय, शब्द-चयन और दृष्टिकोण सभी संकुचित था। प्रायः सभी लेखक एक निश्चित तद्भवयुक्त शुद्ध हिंदी के समर्थक थे । ये लोग आपस में बैठ जाते, वाद-विवाद करते और अपनी रचनाएँ अपने वर्ग के

लिए ही लिखते-पढ़ते रहते थे । उस समय के गद्य का रूप आजकल की किसी विशेष साहित्यिक गोष्ठी के समान था । 'भारतेन्दु-मण्डल' की इस संकीर्ण नीति का परिणाम यह हुआ कि हिंदी-गद्य एक विशेष वर्ग तक ही रुका हुआ पड़ा रहा ।'' [20]

सन 1909-16 ई. तक जब महावीर प्रसाद द्विवेदी ने प्रयाग की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का संपादन करना आरंभ किया, तो गद्य की भाषा पुनः व्यवस्थित होने लगी । उन्होंने अंग्रेजी के बहुत से निबंधों का सफल अनुवाद कर लेखकों के सामने गद्य का एक आदर्श रूप उपस्थित किया । जिससे द्विवेदी युग के लेखकों को संस्कृत, बंगला, मराठी तथा अंग्रेजी ग्रंथों के अनुवाद करने की प्रेरणा मिली ।

मौलिक गद्य लेखन की दृष्टि से उनका योगदान अधिक नहीं है । वे एक सफल श्रेष्ठ अनुवादक थे । उनके द्वारा हिंदी साहित्य में गद्य को जो बल मिला, वह सर्वथा प्रशंसनीय है । इस प्रकार उन्होंने लेखकों की विविध समस्याओं का हल निकालकर भाषा को एक स्थिर-व्यवस्थित रूप दिया । 'सरस्वती' के प्रकाशित लेखों द्वारा व्याकरण संबंधित अशुद्धियों को दूर किया गया। ऐसे शब्दों पर अधिक जोर दिया गया जो प्रायः सभी लोगों को समझ में आ सकते थे । वे सरल और व्यावहारिक भाषा के पक्षपाती थे । इन्हीं के शब्दों में-

"मैं तो सरल भाषा के लेखक को बहुत बड़ा लेखक मानता हूँ - दूसरी भाषाओं के शब्दों और भावों को ग्रहण कर लेने की शक्ति रखना ही सजीवता का लक्षण है - हमें केवल यह देखते रहना चाहिए कि इस सम्मिश्रण के कारण कहीं हमारी भाषा अपनी विशेषता तो नहीं खो रही - बिगड़कर कहीं वह और कुछ तो नहीं होती जा रही, बस ।"[21]

द्विवेदी जी के भाषा सुधार के संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने लिखा है -

"'सरस्वती' के संपादक के रूप में उन्होंने आई पुस्तकों के भीतर व्याकरण और भाषा की अशुद्धियाँ दिखाकर लेखकों को बहुत कुछ सावधान कर दिया । यद्यपि कुछ हठी और अनाड़ी लेखक अपनी भूलों और गलतियों का समर्थन तरह-तरह की बातें बनाकर करते रहे पर अधिकतर लेखकों ने लाभ उठाया और लिखते समय व्याकरण आदि का पूरा ध्यान रखने लगे । गद्य की भाषा पर द्विवेदी जी के इस शुभ प्रभाव का स्मरण जब तक भाषा के लिये शुद्धता आवश्यक समझी जाएगी तब तक बना रहेगा ।"[22]

इनके द्वारा भाषा को सुधारने के प्रयास से भाषा की व्यापकता बढ़ने लगी और शब्द भण्डार भी प्रचुर होने लगा । अंग्रेजी, बंगला, मराठी आदि भाषाओं से अनेक नये-नये शब्द रूपांतरित होकर हिंदी में आने लगे । जब हिंदी भाषा की एक विशिष्ट प्रकृति बनने लगी और भाषा के स्थिर और व्यवस्थित रूप लेने का कार्य सुविधापूर्वक सम्पन्न हो गया तो द्विवेदी जी ने हिंदी गद्य

को अनेक प्रकार की शैली भी प्रदान की । द्विवेदी जी की भाषा-शैली का एक नमूना देखिए -

''कविता से विश्रान्ति मिलती है । वह एक प्रकार का विराम स्थान है। उससे मनोमालिन्य दूर होता है थकावट कम हो जाती है । चक्की पीसने के समय स्त्रियाँ, काम करने में मजदूर आदि, परिश्रम कम होने के लिए, गीत गाते हैं । जैसे मनुष्यों के लिए गाने की जरूरत है वैसे ही देश के लिए कविता की जरूरत है । प्रतिदिन नये-नये गीत बनते हैं और सब कहीं गाये जाते हैं।....''[23]

इस उदाहरण के शब्दों पर विचार करते समय पता चलता है कि वे मध्यम मार्ग का अनुसरण करना चाहते थे । संस्कृत के शब्दों का व्यावहारिक स्तर पर प्रयोग करना उन्हें अनुकूल था । 'विश्रान्ति', 'मनोमालिन्य' ऐसे ही शब्द हैं जो सरल शब्दावली के साथ खप जाते हैं । सामान्यतः इसमें बोलचाल की भाषा के शब्द ही प्रयुक्त हैं ।

उनके द्वारा अनेक नवीन लेखकों को गद्य के क्षेत्र में लिखने के लिए प्रेरणा मिली । द्विवेदी जी इस परिवर्तन के युग में एक युग प्रवर्तक साहित्यिक नेता के रूप में हमारे सामने आते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने लिखा है।

''खड़ी बोली को परिष्कार तथा स्थिरता प्रदान करने वालों में ये अग्रगण्य हैं ।''[24]

सन 1917-25 ई. तक द्विवेदी जी के परिश्रम के फलस्वरूप उच्च कोटि का गद्य प्रकाशित होने लगा । इसी समय प्रेमचन्दजी ने अपने श्रेष्ठ चरित्रप्रधान और भावप्रधान उपन्यास लिखे। नाटक तथा कहानियों का महत्त्व बढ़ने लगा, थोड़े समय के थोड़े समय के भीतर ही प्रेमचन्द प्रसाद, विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' आदि द्वारा सुन्दर कहानियों का प्रादुर्भाव हुआ । पंडित रामचन्द्र शुक्ल और श्यामसुंदर दास जैसे श्रेष्ठ समालोचक भी इसी समय हुए। गद्य गीतों के प्रचलन का श्रेय इसी समय को है । अतः हिंदी गद्य में यदि द्विवेदी-युग के अंतिम समय को 'स्वर्णयुग' के नाम से पुकारा जाय तो, इसमें कोई आश्रय नहीं है ।" [25] उपरोक्त वाक्य डॉ. धीरेन्द्र वर्माजी ने द्विवेदी जी के लिए सही लिखा है ।

2.2 हिंदी उपन्यास का विकास

2.2.1 'उपन्यास' शब्द का अर्थ एवं व्युत्पत्ति

वर्तमान हिंदी उपन्यास हिंदी साहित्य के लिए एक सर्वथा नयी देन है। 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग आज जिस अर्थ में सर्वस्वीकृत हो रहा है, वह मूल 'उपन्यास' शब्द से भिन्न है । प्राचीन संस्कृत साहित्य में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग मिलता है, परंतु यह शब्द आजकल के उपन्यासों के अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता था ।

‘‘संस्कृत लक्षण-ग्रंथों में इस शब्द का प्रयोग नाटक की संधियों के उपभेद के लिए हुआ था । इसकी दो प्रकार से व्याख्या की गई है - ‘उपन्यास प्रसादनम’ अर्थात् प्रसन्न करने को उपन्यास कहते हैं । दूसरी व्याख्या के अनुसार ‘उपपत्तिकृतोव्यर्थः उपन्यासः प्रकीर्तित’ अर्थात् किसी अर्थ को युक्तियुक्त रूप से उपस्थित करना ‘उपन्यास’ कहलाता है ।’’ [26]

संभव है कि उपन्यास में प्रसन्नता देने की शक्ति तथा अर्थ को प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति के कारण इन विशेषताओं से युक्त कथाप्रधान रचनाओं का नाम ‘उपन्यास’ पड़ा हो, क्योंकि ‘उपन्यास’ शब्द यही ध्वनि देता है । यह अनुमान उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि संस्कृत नाटक साहित्य के ‘उपन्यास’ शब्द और आधुनिक प्रचलित ‘उपन्यास’ में केवल नाम का ही साम्य है, प्रकृति का नहीं ।

वास्तव में उपन्यास शब्द ‘‘ ‘उप’ तथा ‘न्यास’ के योग से बना है, जिनके अर्थ क्रमशः ‘समीप’ तथा ‘वस्तु’ है । इस प्रकार ‘उपन्यास’ का अर्थ हुआ ‘समीप रखी हुई वस्तु’ अर्थात् ऐसी कृति जो हमें अपने जीवन के निकट प्रतीत हो । ‘न्यास’ का अर्थ यदि रखना, स्थापना अथवा प्रतिष्ठा समझा जाय, तो उपन्यास उस कृति को कहेंगे जो जीवन के किसी कथात्मक रूप को हमारे निकट रखे । उपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार भी की जा सकती है − उप + नि + आस = उपन्यास । यहाँ प्रथम नि + आस को जोड़कर न्यास शब्द बनता है और फिर उप उपसर्ग से उसे मिलाकर ‘उपन्यास’ शब्द सिद्ध होता है। ‘उप’ का अर्थ तो

समीप है ही, 'न्यास' शब्द एक विशेष प्रकार की ठीका पद्धति के लिए भी प्रयुक्त किया जाता था । इस दृष्टि से कथा साहित्य के अंग विशेष के लिए 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग उपयुक्त ही है, क्योंकि आधुनिक युग में जीवन के निकटतम चित्र को चित्रित करने वाले माध्यम के रूप में उसे मान्य किया जाता है ।'' [27]

हिंदी विश्वकोष के अनुसार उपन्यास का अर्थ है - ''उपकथा अर्थात् सुनने और पढ़नेवाले का दिल खुश करने के लिए बनाकर लिखा हुआ किस्सा ।''[28]

हिंदी शब्द सागर के अनुसार उपन्यास का अर्थ है - ''वाक्य का उपक्रम, बात की लपेट, बात का लच्छा, कल्पित आख्यायिका, कथा आदि।''[29]

अंग्रेजी में ''अंग्रेजी शब्द 'नावेल (Novel) लेटिन के विशेषण (Nevella), इतालियन और स्पेनिश शब्द Novella एवं फ्रांसीसी शब्द Novelle से ग्रहण किया गया है ।'' [30]

अंग्रेजी के 'नोवल' शब्द के वजन पर 'नवल' शब्द तेलुगू, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में प्रयोग मूलतः नवीनता के बोधक हैं । डॉ. माता प्रसाद गुप्त के अनुसार-

''हिंदी में उपन्यास शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सन 1871 में एक कथा-पुस्तक के नामकरण में 'मनोहर उपन्यास' के रूप में हुआ । हिंदी में यह

'उपन्यास' शब्द बंगला के माध्यम से आया है । बंगला साहित्य में इसका प्रयोग सन् 1856-57 ई. से ही होने लगा था । संक्षेप में कह सकते हैं कि बंगला और हिंदी में उपन्यास शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'नावेल' के अर्थ में मिलता है ।''[31]

इसी प्रकार दक्षिण भारतीय भाषाओं में विशेष रूप से तेलुगु में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग वक्तृता के अर्थ में होता है । तमिल तथा कन्नड़ आदि भाषाओं में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग 'व्याख्यान' के अर्थ में किया जाता है । गुजराती भाषा में 'उपन्यास' के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले अंग्रेजी शब्द 'नोवेल' के अर्थ बोधक 'नवल' अथवा 'नवलकथा' का प्रयोग किया गया है । 'उपन्यास' के ही अर्थ में वहाँ 'वार्ता' शब्द का प्रयोग भी मिलता है । मराठी भाषा में उपन्यास के अर्थ सूचन के लिए 'कादम्बरी' शब्द का प्रयोग किया गया है, क्योंकि इन दोनों में कथा तत्त्व की दृष्टि से समरूपता मिलती है । यों 'नोवल' के अर्थ में वहाँ नवलिका शब्द का प्रयोग भी मिलता है । इससे स्पष्ट है कि 'उपन्यास' अथवा 'नोवेल' नामक शब्दों का प्रयोग कथा साहित्य के एक रूप विशेष के लिए प्रायः सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में किया जा रहा है।

अतः कहा जा सकता है कि 'उपन्यास' मानव जीवन का बहु-आयामी और विश्वसनीय महाकाव्य है । इसलिए उपन्यास शब्द के अर्थ को एक निश्चित अर्थ देना कठिन है और यही कारण रहा होगा कि उपन्यास की परिभाषाएँ भी अनेक हैं । अब हम उपन्यास के स्वरूप और परिभाषा पर विचार करेंगे ।

2.2.2 उपन्यास का स्वरूप

उपन्यास साम्प्रतिक विश्व-साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रचलित, लोकप्रिय एवं बहुचर्चित विधा है । वह कथा साहित्य का आधुनिक रूप है । उपन्यास जीवन की उपासना है । उपन्यास मानव जीवन के साथ तादात्म्य स्थापित करता है । एक सफल उपन्यास को जीवन का भाष्य कहा जा सकता है । उपन्यास दौड़ते हुए जीवन को पकड़ता है । पाश्चात्य साहित्य से बंगला साहित्य में और बंगला साहित्य में से हिंदी साहित्य में उपन्यास विधा का आविर्भाव हुआ है । उपन्यास साधारणतया साहित्य की एक नई विधा है, फिर भी आधुनिक युग में उपन्यास अत्यन्त लोकप्रिय और महत्वपूर्ण साहित्यिक विधा बन गया है । इसका मूल कारण यही है कि उपन्यास में मनुष्य अपनी पूरी समग्रता पूर्णता के साथ समा सकता है । उसका आयाम इतना अधिक विस्तृत होता है कि उसमें जीवन अथवा जीवन का कोई अंश सहज ही अवतरित हो जाता है ।

हिंदी उपन्यास की शक्ति का विश्लेषण करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है - ''उपन्यास आधुनिक युग की देन है । नये गद्य के प्रचार के साथ-साथ उपन्यास का प्रचार हुआ है यह आधुनिक वैयक्तिकतावादी दृष्टिकोण का परिणाम है । इसमें लेखक अपना एक निश्चित मत प्रकट करता है और कथानक को इस प्रकार सजाता है कि पाठक अनायास ही उसके उद्देश्य को ग्रहण कर सके और उससे प्रभावित हो सके । लेखकों का इस प्रकार का वैयक्तिक दृष्टिकोण ही नये उपन्यासों की आत्मा है ।''[32]

अंततः कहा जा सकता है कि गद्य साहित्य की विविध विधाओं में उपन्यास की जितनी उन्नति अनेक दिशाओं में हुई है उतनी किसी अन्य विधा की नहीं । क्योंकि उपन्यास एक ऐसी स्वच्छंदता प्रदान करनेवाली विधा है जिसमें लेखक खुलकर अपने विचारों के पट को बुनकर उसे आकर्षक स्वरूप प्रदान कर सकता है । उपन्यास के इसी स्वरूप को दृष्टि में रखकर अनेक विद्वानों ने इसे अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है ।

2.2.3 उपन्यास की परिभाषा

उपन्यास विधा में जितना वैविध्य है उतना किसी विधा में नहीं, इसलिए उपन्यास की कोई सर्वमान्य परिभाषा अभिव्यक्त हो पाना आसान नहीं है । पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने इसकी गद्यात्मकता, यथार्थवादिता, कल्पनात्मकता, कथात्मकता और कलात्मकता आदि पर बल देते हुए इसको परिभाषित करने का प्रयत्न किया है । उपन्यास की कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित दी जा रही है ।

पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ

वेब्स्टर (Webester) के अनुसार ‘‘उपन्यास एक ऐसा कल्पित विशालकाय गद्यमय आख्यान है, जिसमें एक ही कथानक के अंतर्गत यथार्थ जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों और उनके क्रियाकलापों का चित्रण रहता है।’’[33]

राल्फ फाक्स के अनुसार- ''उपन्यास केवल मात्र कथात्मक गद्य नहीं है, वह मानव के जीवन का गद्य है - ऐसी पहली कला है, जो संपूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है ।''[34]

क्लारा रीब ने भी उपन्यासों में यथार्थ चित्रण पर बल देते हुए कहा है - ''उपन्यास में अपने समकालीन मानव जीवन और रीति-रिवाजों का यथार्थ चित्रण होता है ।''[35]

डॉ. हर्बट जे. मूलर के शब्दों में - ''उपन्यास में मानव-अनुभवों का चित्रण एक विशिष्टता के साथ स्वतंत्र अथवा आदर्शात्मक दृष्टिकोण से किया जाता है । अतः अनिवार्यतः जीवन पर की गई टिप्पणी है ।''[36]

एम.एम. श्राइबर के अनुसार - ''सन्, 1920 के पूर्व उपन्यासों के विषय में कहा जा सकता है कि वे एक निश्चित लम्बाई के ऐसे गद्यमय काल्पनिक आख्यान हैं जिनमें विश्वसनीय पुरुषों के वास्तविक संसार में किए गए विश्वसनीय कार्यकलापों, उनकी प्रकृति और अन्तर्सम्बन्धों का अंकन मिलता है ।''[37]

भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ

प्रेमचन्द के शब्दों में - ''मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र मानता हूँ । मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है ।''[38]

डॉ. शशिभूषण सिंहल के मतानुसार - ''उपन्यास में अंकित जीवन हमारे यथार्थ जीवन का आभास देते हुए भी मूलतः उस जीवन से भिन्न अपेक्षाकृत सीमित एवं गहन होता है ।'' [39]

नेमिचन्द्र जैन ने लिखा है - ''आज के जीवन के भाव-सत्य को अपनी समग्रता में, सभी स्तरों और आयामों में व्यापकता और गहनता के दोनों क्षेत्रों में, अभिव्यक्त करने के लिए उपन्यास से अधिक समर्थ माध्यम दूसरा नहीं । आज की बौद्धिक उथल-पुथल और भागवत अन्तर्द्वन्द्व को दैनंदिन जीवन और उसके परिवेश में प्रतिष्ठित करके अंकित करने तथा इन विभिन्न पक्षों के परस्पर संबंध और महत्व को दर्शाने के लिए उपन्यास बड़ी ही उपयुक्त विधा है ।'' [40]

डॉ. प्रताप नारायण टण्डन ने उपन्यास की श्रेष्ठता को स्वीकृत करते हुए लिखा है कि - ''प्राचीन युग में महाकाव्य को साहित्य के विविध माध्यमों में जिस प्रकार से सर्वोपरि स्थान दिया जाता था, उसी प्रकार उपन्यास का महत्त्व निदर्शित करते हुए उसे भी आधुनिक जीवन का महाकाव्य कहा गया । यही नहीं, नीति तथा दर्शन आदि के संयोजन तथा मानवीय उदात्तता की सम्भावनाओं के माध्यम के रूप में उपन्यास की अपरिमित महत्ता को स्वीकार किया गया । उपन्यास के अस्तित्व तथा महत्व प्रसार का मूल कारण यही माना गया कि वह मनुष्य के जीवन का समग्रता के साथ प्रतिनिधित्व करता है ।'' [41]

बाबू गुलाब राय ने लिखा है - ''उपन्यास कार्य-कारण श्रृंखला में बँधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक व काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।'' [42]

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के मतानुसार - ''मेरी समझ में उपन्यास मानव जीवन का वह स्वच्छ और यथार्थ गद्यमय चित्र है, जिसमें मानव मन के प्रसादन की अद्भुत शक्ति के साथ-साथ उसके रहस्यों के उद्घाटन तथा उसके उन्नयन की विचित्र क्षमता भी होती है ।'' [43]

2.2.4 उपन्यास के विविध प्रकार

आधुनिक उपन्यास - साहित्य का विकास युग-जीवन के विविध क्षेत्रों और साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों को देखते हुए व्यापक रूप से हुआ है । पूर्ववर्ती युग में जब उपन्यास का स्वरूप इतना बहुमुखी था, तब किसी भी कथात्मक कृति को उपन्यास की संज्ञा देकर संतोष कर दिया जाता था । आगे चलकर ज्यों-ज्यों उपन्यास के साहित्यिक और कलात्मक स्वरूप का विकास होता गया त्यों-त्यों विषय वैविध्य की दृष्टि से भी इसका क्षेत्र विस्तार होता गया । आधुनिक युग में यदि उपन्यास साहित्य का संपूर्णता से अवलोकन किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि उसमें अधिक बहुरूपता है कि बिना प्रवृत्तिगत रूप

विभाजन किये उसका सम्यक् अध्ययन संभव नहीं है । अतः भिन्न-भिन्न विद्वानों ने उसे अपनी-अपनी दृष्टि से भिन्न-भिन्न रूपों में वर्गीकृत किया है ।

डॉ. प्रताप नारायण टंडन ने उपन्यास के कई भेद माने हैं - ''जैसे ऐतिहासिक उपन्यास, सांस्कृतिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास, समस्याप्रधान उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, राजनीतिक उपन्यास, प्रयोगात्मक उपन्यास, तिलस्मी-उपन्यास, जादुई उपन्यास, जासूसी उपन्यास, लोक कथात्मक उपन्यास, आंचलिक उपन्यास तथा वैज्ञानिक उपन्यास आदि ।''[44]

डॉ. कैलाश प्रसाद के शब्दों में कहें तो - ''उपन्यासों का वर्गीकरण कई प्रकारों से हो सकता है । तत्वों के सापेक्षिक महत्व को ध्यान में रखकर उपन्यास घटना प्रधान, चरित्र-प्रधान तथा उद्देश्य-प्रधान है । कथावस्तु में तथ्यों की सत्यता को दृष्टि में रखकर उपन्यास कल्पनाप्रधान तथा वास्तविकता प्रधान कहे जा सकते हैं । काल की दृष्टि से वे ऐतिहासिक तथा सामाजिक हैं। कथावस्तु के विशेष गुण को ध्यान में रखकर सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, भौतिक, जासूसी आदि उपन्यासों के भेद हैं । शैली की दृष्टि से उपन्यास नाटकीय या विवरणात्मक हो सकते हैं । अंतर्जगत के संबंध से भाव-प्रधान और बहिर्जगत के संबंध से उनको देशकाल सापेक्ष वर्ग में रखा जाता है । उपन्यास के इतने अधिक प्रकार हैं कि एक सामान्य आधार को लेकर अभी उपन्यासों का वर्गीकरण नहीं हो सकता, अनेक ऐसे उपन्यास हैं जिनको किसी एक ही वर्ग में

रखना संभव नहीं । वस्तुतः जितने प्रसिद्ध उपन्यास हैं, उतने ही उपन्यास के प्रकार भी माने जा सकते हैं ।'' [45]

इस प्रकार उपन्यासों के कई दृष्टियों से और भी भेद हो सकते हैं परन्तु मैं यहाँ कुछ प्रसिद्ध प्रकारों का संक्षिप्त परिचय दे रही हूँ ।

2.2.4.1 अनूदित उपन्यास

किसी उपन्यास का अन्य भाषा में अनुवाद किया गया हो उसे अनूदित उपन्यास कहा जाता है। अन्य भाषाओं से हिंदी में जो उपन्यास अनूदित किए गए, इस प्रकार के उपन्यासों को हिंदी का उपन्यास कहा जाता है। इस प्रकार के उपन्यास हिंदी उपन्यास के प्रारंभिक काल में देखने को मिलते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने इसके संदर्भ में लिखा है -

''अनूदित रचनाएँ किसी भी भाषा की मूल संपत्ति नहीं समझी जातीं परन्तु हिंदी उपन्यास के प्रारंभिक काल में अनूदित उपन्यासों का विशिष्ट योगदान रहा है ।'' [46]

हिंदी में बंगला, अंग्रेजी, उर्दू, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं के अनूदित उपन्यास प्रारंभिक काल में बहुत संख्या में मिलते हैं । परन्तु सबसे अधिक अनुवाद बंगला से किए गए हैं । उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में बंगला साहित्य में बंकिमचन्द्र चटर्जी (1858-1864), रमेशचन्द्र दत (1848-1906), और दामोदर मुखर्जी (1853-1907) आदि के उपन्यास अनूदित हुए थे ।

अतः हिंदी में भी प्रायः इन्हीं के उपन्यास अनूदित हुए । श्री गदाधरसिंह ने रमेशचन्द्र दत्त कृत 'बंग विजेता' और बंकिमचन्द्र कृत 'दुर्गेश नन्दिनी का अनुवाद किया।' प्रतापनारायण मिश्र ने बंकिमचन्द्र कृत 'राज सिंह', 'इन्दिरा', 'राधारानी' तथा राधाचरण गोस्वामी ने दामोदर मुखर्जी कृत 'मृगमयी' का अनुवाद किया ।

इसके अतिरिक्त गुजराती से मेहता लज्जाराम शर्मा जी ने 'कपटी मित्र', मराठी से स्वयं भारतेन्दुजी ने 'पूर्णप्रकाश चन्द्रप्रभा', अंग्रेजी से रेनाल्ड्स कृत 'लैला', 'लंदन रहस्य' तथा श्रीमती स्टो कृत 'टाम काका की कुटिया' आदि उपन्यासों का अनुवाद हुआ । उर्दू से अनुवाद करने वालों में बाबू रामकृष्ण वर्मा तथा गंगा प्रसाद गुप्त के नाम उल्लेखनीय हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी उपन्यास के प्रारंभिक काल में जितने प्रकार के उपन्यास उपलब्ध होते हैं – सामाजिक, ऐतिहासिक, जासूसी आदि । उन सबके नमूने इन अनुदित उपन्यासों में मिल जाते हैं । अतः यह सहज ही समझा जा सकता है कि इन अनूदित उपन्यासों ने हिंदी के मौलिक उपन्यासों को नयी जमीन, नया क्षितिज दिया है । इनसे प्रेरित होकर हिंदी उपन्यास-साहित्य आगे चलकर पल्लवित एवं पुष्पित हुआ है । अतः इन उपन्यासों का हिंदी उपन्यास-साहित्य की विकास परंपरा में ऐतिहासिक महत्त्व है ।

2.2.4.2 तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास

“तिलस्म शब्द यूनानी ‘टेलेस्मा’ का हिंदी संस्करण है । इसका अर्थ जादू, इंद्र जाल, अलौकिक रचना या गड़े हुए धन या खजाना आदि के ऊपर बताई गई सर्प की आकृति आदि होते हैं ।” [47]

“प्राचीन काल में राजा या अत्यन्त धनवान लोग इस प्रकार के तिलस्मी महल बनवाते थे । तिलस्म बाँधने के लिए बड़े-बड़े ज्योतिषियों और तांत्रिकों की सहायता ली जाती थी । अतः जिन उपन्यासों में नायक तिलस्म को तोड़कर इच्छित वस्तु (खजाना) या राजकुमारी आदि पाने की कथा रहती है उसे तिलस्मी कहा जाता है । इस तिलस्म को तोड़ने में ऐयार नायक का साथ देता था । ‘ऐयार’ अरबी भाषा का शब्द है । जिनका अर्थ तीव्रगामी या चपल व्यक्ति होता है । ऐयार बड़ा कुशल और हरफनमौला होता है अतः दोनों को जोड़कर हिंदी में ‘तिलस्मी ऐयारी’ ऐसा शब्द गढ़ लिया गया ।” [48]

तिलस्मी की कहानियाँ फारसी से उर्दू में होते हिंदी में आयी । ‘तिलस्मे होशरूबा’ फारसी की प्रख्यात कृति है । इन उपन्यासों में कहानी दर-कहानी का गोरखधन्धा चलता है जिनमें पाठक की केवल जिज्ञासा – वृत्ति को तृप्त किया जाता है । इस प्रकार की उपन्यासों की रचना सामान्य रूप से रहस्यात्मक कथा पद्धति में की जाती है । हिंदी में तिलस्मी ऐयारी उपन्यासों का प्रवर्तन बाबू देवकीनन्दन खत्री ने किया । देवकीनन्दन खत्री का ‘चन्द्रकान्ता’ और ‘चन्द्रकान्ता संतति’ इसी प्रकार के उपन्यास हैं ।

2.2.4.3 जासूसी उपन्यास

ये उपन्यास स्थूल घटनात्मक उपन्यासों की कोटि में आते हैं और प्रायः यात्रा की बोरियत से बचने के लिए तथा समय काटने के लिए पढ़े जाते हैं । अतः इनका दृष्टिकोण भी पलायनवादी है । परन्तु जहाँ तिलस्मी उपन्यासों में काल्पनिक जगत का चित्रण मिलता है, वहाँ जासूसी उपन्यासों में घटनाएँ यथार्थ जीवन से संबंधित होती हैं । उनमें विज्ञान की आधुनिक खोजों का भी सहारा लिया जाता है । कुतूहल ऐसे उपन्यासों का प्राणतत्व है । उपन्यासकार अंत तक कुतूहल बनाये रखता है । अधिकांश जासूसी उपन्यासों में आखिर में ऐसा व्यक्ति अपराधी सिद्ध होता है जिस पर पाठकों का ध्यान बहुत कम जाता है । इसमें घटना-चक्र विपरीत दिशा में चलता है । जासूसी उपन्यासों में केवल स्थूल घटना (और वह भी अपराध संबंधी) को ही लिया जाता है ।

अधिकांश जासूसी उपन्यास इस सिद्धान्त पर काम करते हैं कि अपराधी व्यक्ति चाहे जितनी होशियारी बरते अपने पीछे वह कोई न कोई संकेत छोड़ जाता है । उन संकेतों को पकड़ने में जासूसी उपन्यासकार की सफलता का आधार है । ऐसे उपन्यासों में चमत्कारिता के साथ साहसिकता पाई जाती है।

हिंदी में जासूसी उपन्यासों का प्रवर्तन बाबू गोपालराम गहमरी ने किया है । डॉ. पारूकान्त देसाई ने लिखा है कि – “कई आलोचकों ने उन्हें हिंदी का ‘कानन डायल’ कहा है ।”[49]

सर्वप्रथम उन्होंने बंगला से एक जासूसी उपन्यास 'हीरे का मोल' सन् 1838 ई. में अनुवाद किया, उसकी प्रसिद्धि से उत्साहित होकर उन्होंने लगभग 200 जासूसी उपन्यास लिखे जिनमें 'अद्भुत लाश' (1819 ई.), 'सरकती लाश' (1900 ई.) 'जमुना का खून' (1900 ई.), 'डबल जासूस' (1900 ई.) 'जासूस की भूल' आदि प्रसिद्ध है ।

2.2.4.4 सामाजिक उपन्यास

समाज में रहते हुए व्यक्ति समाज से प्रभावित होता है और वह समाज को प्रभावित भी करता है । सामाजिक उपन्यास में समाज का चित्रण प्रमुख रहता है । रामदरश मिश्र के शब्दों में –

''सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक जीवन का चित्रण रहता है किन्तु उसे देखने की लेखक की निर्दिष्ट कोई दृष्टि नहीं रहती । यानी दृष्टि होती है किन्तु वह किसी प्रकार की हो सकती है - लेखक की अपनी भी हो सकती है और किसी संस्था की भी।'' [50]

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में जो उपन्यास मिलते हैं उनमें अधिकांश सामाजिक वर्ग के अंतर्गत आते हैं । भारतेन्दु युग में आरंभ होनेवाली इस प्रवृत्ति का प्रसार परवर्ती युगों में अनेक रूपों में हुआ है । भारतेन्दु युग, प्रेमचन्द युग तथा प्रेमचन्द के परवर्ती युग में यह औपन्यासिक प्रवृत्ति अनेक रूपों में मिलती है । जैसे समस्या प्रधान, भाव प्रधान, आदर्शवादी, नीतिप्रधान, आदर्श

परक, यथार्थवादी आदि । प्रेमचन्द का 'सेवासदन', 'निर्मला', उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का 'गिरती दीवारें', अमृतलाल नागर का 'सुहाग के नूपुर' आदि इसी प्रकार के उपन्यास हैं ।

2.2.4.5 ऐतिहासिक उपन्यास

जिस तरह से सामाजिक उपन्यास की रचना की गई, उसी तरह ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गये । ऐतिहासिक उपन्यासों में किसी भी देश या काल की कोई ऐतिहासिक कथा उपन्यास की शैली पर चित्रित की जाती है। इस प्रकार के उपन्यास में घटना, चरित्र या घटना-चरित्र का ध्यान कथा कहने पर रहता है । ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए इतिहास की रक्षा के साथ-साथ उसके स्वरूप को अपनी कल्पना के द्वारा स्पष्ट करना भी आवश्यक होता है । इस संदर्भ में महेन्द्र चतुर्वेदी का मत है –

"वस्तुतः ऐतिहासिक उपन्यास कथा और इतिहास के पुराने संबंधों की ही नई समन्वयात्मक परिणति है । उसके पीछे हमारे पुराने संस्कार हैं और प्रेरणा मानव की एक मौलिक वृत्ति में निहित है - वह वृत्ति है आत्मप्रसार की । जो अतीत है उस तक मानव अपना विस्तार करना चाहता है, उसकी चेतना अतीत और वर्तमान के बीच सेतु बन जाती है ।" [51]

ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में डॉ. वृन्दावनलाल वर्मा हिंदी के प्रथम विशिष्ट उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यासों में इतिहास और कल्पना का सुन्दर

मेल, सुन्दर प्राकृतिक चित्रण और यथार्थता का पुट सब कुछ मिलता है । उनके प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं - 'गढ़कुंडार', 'विराट की पद्मिनी', 'मुसाहिबजू' आदि, इसके अतिरिक्त चतुरसेन शास्त्री का 'वैशाली की नगर वधू', यशपाल का 'दिव्या', भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' आदि उपन्यास उल्लेखनीय है ।

2.2.4.6 मनोवैज्ञानिक उपन्यास

मनोवैज्ञानिक उपन्यास का प्रारंभ तो प्रेमचन्द के उपन्यासों से ही हो गया था । इन उपन्यासों में सामाजिक जीवन के जटिल प्रश्नों और समस्याओं को साथ उभारा गया है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहने का तात्पर्य है जो मनोविश्लेषण पर आधारित है । मनोविज्ञान साहित्य के लिए नयी वस्तु नहीं, वह आदि कवि-वाल्मीकि से लेकर आज तक के सभी कवियों, साहित्यकारों की कृतियों में दिखाई देता है । मनोविश्लेषणवाद मस्तिष्क के चेतन, अवचेतन, अचेतन तीन विभाग कर अचेतन को विशेष महत्व प्रदान करता है । जब वह अपनी कोशिशों के बावजूद अपने वातावरण से कोई उत्तर नहीं पाता तो उसे कष्ट होता है और कल्पना की शरण लेता है ।

डॉ. रामदरश मिश्र के शब्दों में - ''मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की प्रवृत्ति होती है कि वे स्वभावतः समाज की अनेकानेक समस्याओं से विमुख होकर व्यक्ति के भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं, व्यक्ति के मन की गहराई में अवस्थित अंतर्निहित

वासनाओं, ग्रंथियों और जटिल समस्याओं को तथा मन पर उभरती बाह्यजगत की सूक्ष्म छायाओं को बिम्बों, प्रतीकों से उद्घाटित करते हैं । इस प्रक्रिया में मनोविश्लेषण का सहारा लेते हैं ।'' [52]

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का लक्ष्य पात्रों का मनोवैज्ञानिक शोध करना है। अतः मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में सामान्य व्यक्ति की असामान्य मनोदशा और आचारों का आकलन होता है, असामान्य व्यक्ति की असामान्य अवस्था भी चित्रित होती है ।

इन उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के स्थान पर वैयक्तिक पीड़ाओं एवं मानसिक द्वन्द्व को प्रस्तुत किया गया है । इन उपन्यासों में कथावस्तु का सृजन मानव मन की अवचेतन प्रक्रियाओं तथा मानसिक ग्रन्थियों के आधार पर होता है। जैनेन्द्र का 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', इलाचन्द्र जोशी का 'जहाज का पंछी', अज्ञेय का 'अपने-अपने अजनबी', 'शेखर-एक जीवनी' इसी प्रकार के उपन्यास हैं।

2.2.4.7 आंचलिक उपन्यास

ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक उपन्यास-स्वतंत्रता के पूर्व भी लिखे गए और पश्चात भी, लेकिन स्वतंत्रता के बाद एक नए ढंग का उपन्यास आता है जिसे आंचलिक उपन्यास कहा जाता है । इस प्रकार के उपन्यासों में साहित्यकार क्षेत्र-विशेष (अंचल) से कथावस्तु का चुनाव करता है । क्षेत्र-विशेष

के जन-जीवन के आधार पर कथा रचने के कारण ही इसे आंचलिक उपन्यास कहा जाता है ।

डॉ. हरदयाल के शब्दों में - ''आंचलिक उपन्यास वह है, जिसमें अपरिचित भूमियों और अज्ञात जातियों के वैविध्यपूर्ण जीवन का चित्रण हो । जिसमें वहाँ की भाषा लोकोक्ति, लोक-कथायें, लोकगीत, मुहावरे और लहजा, वेशभूषा, धर्म-जीवन समाज, संस्कृति तथा आर्थिक और राजनीतिक जागरण के प्रश्न एक साथ उभरकर आवें ।''[53]

'फणीश्वरनाथ रेणु' के उपन्यास से आंचलिक उपन्यास की वास्तविक शुरुआत मानी जाती है । इनके उपन्यास में 'मैला आँचल', 'परती परिकथा', 'जुलूस' आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त उमाशंकर भट्ट का 'सागर लहरें और मनुष्य', रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ', नागार्जुन का 'बलचनमा', रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ' आदि इसी प्रकार के उपन्यास हैं।

2.2.4.8 राजनीतिक उपन्यास

हिंदी साहित्य जगत में साहित्यकारों ने उपन्यास में राजनीतिक तत्व का समावेश बड़ी कुशलता से किया है। राजनीतिक उपन्यास का विकास हिंदी साहित्य में विशेष रूप से प्रेमचन्द से दिखाई पड़ता है। राजनीतिक उपन्यास में लगभग अलग-अलग देशों की विभिन्न राजनीतिक समस्याओं का चित्रण किया जाता है ।

डॉ. राम शोभित प्रसाद सिंह के शब्दों में - ''जिन उपन्यासों में समसामायिक युग की राजनीतिक समस्याओं का सच्चा अंकन रहता है, जिन उपन्यासों में सामाजिक से राजनीतिक विचारधाराओं के प्रस्तुत करने पर जोर दिया गया है, जिन उपन्यासों में राजनीतिक आबोहवा का प्राधान्य रहता है, राष्ट्रीय जीवन की विविध राजनीतिक विचार तरंगों का उच्छ्वास रहता है, उन्हें ही हम राजनीतिक उपन्यास की संज्ञा दे सकते हैं।''[54]

हिंदी में राजनीतिक उपन्यासों की प्रवृत्ति के अंतर्गत जो रचनाएँ आती हैं, उनमें से बहुत सी ऐसी हैं जिनमें किसी-न-किसी रूप में साम्यवादी विचारधारा का पोषण या समर्थन किया गया है । हिंदी के अनेक श्रेष्ठ उपन्यासकारों ने इस कोटि की रचनाएँ लिखी हैं। राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, रांगेय राघव, नागार्जुन भैरवप्रसाद गुप्त तथा अन्य अनेक ऐसे उपन्यासकार भी है जिन्होंने राजनीतिक कथा प्रवृत्ति के विकास में योग दिया है, और साम्यवादी विचारधारा का समर्थन किया है । राजनीतिक प्रवृत्ति के अंतर्गत यशपाल का 'पार्टी कामरेड', 'देश द्रोही', राही मासूम रज़ा का 'आधा गाँव', भीष्म साहनी का 'तमस' रांगेय राघव का 'विषाद मठ' आदि ऐसे ही उपन्यास हैं ।

2.3 हिंदी उपन्यास के विकास के चरण

हिंदी साहित्य में उपन्यास का प्रारंभ उन्नीसवीं शताब्दी से माना जाता है। यों तो कथा के विविध अवयवों की छानबीन लिखित और मौखिक परंपरा में

इसके पूर्व से भी की जा सकती है, किन्तु आधुनिक अर्थ में उपन्यास उन्नीसवीं शताब्दी की देन है, जिसकी अभिव्यक्ति का माध्यम गद्य है । हिंदी के परंपराप्रेमी आलोचक अभ्यासवश उपन्यास साहित्य का जन्म प्राचीन संस्कृत तथा मध्यकालीन आख्यानों में मान लेते हैं । डॉ. गुलाबराय के शब्दों में ‘‘भारतीय कथा कथन की परंपराएँ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के ग्रंथों से दाय भाग के रूप में हिंदी में आई हैं। हिंदी में उपन्यासों का आरंभ होने से पहले ‘बाणभट्ट की ‘कादम्बरी’ और दंडी के ‘दशकुमार चरित’ ने तत्कालीन समाज पर इतना प्रभाव डाला कि कई आलोचक इन कृतियों को हिंदी के प्रथम उपन्यास मानने को तैयार हो गए ।’’ [55]

डॉ. सत्येन्द्र ने इन कथाओं को उपन्यास की परंपरा से जोड़ते हुए कहा है कि – ‘‘संस्कृत में साहित्यिक कहानियाँ हैं। जिनमें उपन्यास की परंपरा छिपी है । उपन्यास का आधुनिक ढाँचा यूरोप से अवश्य आया था परन्तु मूल रूप में भारत ने ‘कादम्बरी’, ‘दशकुमार चरित’ जैसे उपन्यासों को पहले जन्म दे दिया है ।’’ [56]

हिंदी में उपन्यास पाश्चात्य साहित्य की देन है । पश्चिम में इसका विकास पुनर्जागरण तथा औद्योगिक विकास के साथ माना जाता है । गोपालराय के मतानुसार - ‘‘उपन्यास बंगला से होते हुए हिंदी क्षेत्र में आया पहले अनुवादों के द्वारा और फिर मौलिक उपन्यास लेखन के द्वारा बंगला में

अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से उपन्यासों का उदय हुआ । 'नोवल' के अर्थ में उपन्यास शब्द हिंदी में बंगला से आया है । अंग्रेजी के अनुकरण पर वैसी ही कथा बंगला में लिखी जानी आरंभ हुई और उनके लिए उपन्यास शब्द प्रचलित हुआ । इससे स्पष्ट होता है कि उपन्यास की प्रेरणा अंग्रेजी भाषा के साहित्य से मिली ।''[57]

डॉ. नगेन्द्र ने भी गुलाब राय के कथन को स्वीकार करते हुए 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में लिखा है - ''यह वास्तव में स्वीकारना पड़ेगा कि हिंदी उपन्यासों का आधुनिक रूप अंग्रेजी के कथा साहित्य से प्रभावित है।''[58]

डॉ. पारुकान्त देसाई ने इस विवेचन का निष्कर्ष निकालते हुए लिखा है - ''उपन्यास मूलतः पश्चिम की विधा है । यह यंत्र-युग की देन है । गद्य-युग की उपज है और उसे प्राचीन कथा साहित्य से जोड़ना (दशकुमार रचित और कादम्बरी आदि से) नितान्त हास्यास्पद है ।''[59]

अतः उपरोक्त विवेचन के द्वारा हम इस निष्कर्ष पर आसानी से पहुँच सकते हैं कि हिंदी साहित्य में उपन्यास का आरंभ गद्य के विकास के साथ जुड़ा हुआ है उन्नीसवीं शताब्दी के साथ ही उपन्यास का प्रारंभ माना जा सकता है । यद्यपि उपन्यास विधा की पृष्ठभूमि में संस्कृत कथा साहित्य प्रेरक रहा है और संस्कृत साहित्य में सुबंधु, बाण एवं दण्डी आदि ने श्रेष्ठ गद्य-काव्यों का प्रणयन किया था फिर भी हिंदी उपन्यास पश्चात् उपन्यासों से अधिक प्रभावित

हुआ । वस्तुतः हिंदी उपन्यास आज अपने जिस स्वरूप में व्यवहृत दिखाई पड़ता है उसका प्रादुर्भाव निश्चय ही पाश्चात्य भूमिका पर हुआ है और इस सत्य को स्वीकार करने में हमें संकोच नहीं होना चाहिए ।

2.3.1 हिंदी का प्रथम उपन्यास

उपन्यास हिंदी साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा है । हिंदी साहित्य में उपन्यास का आरंभ गद्य के विकास के साथ जुड़ा हुआ है । अतः हिंदी का प्रथम उपन्यास किसे माना जाए ? इस विषय में विचारकों में पर्याप्त मतभेद रहा है । यह मतभेद उपन्यासों के ऐतिहासिक कालचक्र, उसके वस्तु और शिल्प तथा कुछ विद्वानों की अस्पष्ट टिप्पणियों से मुखर हुआ है । हिंदी के अधिकांश समीक्षक लाला श्री निवास दास कृत 'परीक्षा गुरु' को हिंदी उपन्यास के प्रवर्तन का श्रेय प्रदान करते हैं । लेकिन कुछ समीक्षकों ने 19वीं शताब्दी के प्रथम चरण में लिखित आख्यानक कृतियों से हिंदी उपन्यास का प्रारंभ माना है। उन्होंने अपने सबल तर्कों के आधार पर कहा है-

''भारतेन्दु से पूर्व हमें (1000 ई. से 1858 ई.) हिंदी में तीन महत्वपूर्ण ग्रंथ मिलते हैं । पहला लल्लूलाल का 'प्रेमसागर' (1803-1809 ई.) दूसरा सदल मिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' (1803 ई.) और तीसरा सैयद इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' (1800 से, 1810 के बीच) । 'नासिकेतोपाख्यान' एवं

'प्रेमसागर' पौराणिक आधार पर रचित ग्रंथ हैं । सभी पात्र परंपरागत संस्कृत पुराणों के अनुसार हैं।'' [60]

इस बात को स्वीकार करते हुए - ''शिवनारायण श्रीवास्तवजी ऐतिहासिक कालक्रम कथा की दृष्टि से 'इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' को प्रथम उपन्यास के लिए प्रस्तावित पहली रचना मानते हैं ।'' [61]

परंतु इस बात का विरोध करते हुए रामदरश मिश्र जी ने लिखा है - ''जिन आलोचकों ने उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के कथा-साहित्य को आधुनिक हिंदी उपन्यास की विकास परंपरा में रखा है। वह उनके भारतीय गौरव की स्थापना का दुराग्रह मात्र है। 'प्रेमसागर' एवं 'नासिकेतोपाख्यान' धार्मिक-पौराणिक कथावस्तु पर आधारित गद्य-आख्यान हैं । 'रानी केतकी की कहानी' की मौलिकता असन्दिग्ध होते हुए भी इसमें आधुनिक औपन्यासिक कला का सर्वथा अभाव है। कदाचित् इसीलिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. गोपालराय, प्रतापनारायण टंडन, शिवप्रसाद सिंह चौहान, प्रभृति विद्वानों ने हिंदी उपन्यास की कोटि में रखे जाने पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की है । उनका मंतव्य है कि इनमें न आधुनिक उपन्यास की भावधारा प्राप्त होती है और न शिल्प-विधि ही।'' [62]

हिंदी साहित्य का प्रथम उपन्यास किसे स्वीकार किया जाए, इस समस्या में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ही अन्य स्थान पर यह लिखा है – " 'भाग्यवती'

नाम का एक सामाजिक उपन्यास भी संवत 1934 में उन्होंने लिखा, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई ।"[63]

अतः शुक्ल जी ने आगे जाकर यह स्वीकार किया कि – "अंग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास पहले पहल हिंदी में लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षागुरु' निकला था ।"[64]

इस संदर्भ में डॉ. श्री कृष्ण लाल जी ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए किसी अन्य उपन्यास को प्रथम उपन्यास माना है । उनके मतानुसार "सन् 1891 में प्रकाशित और 'देवकी नंदन खत्री द्वारा लिखित उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' हिंदी का साहित्यिक उपन्यास था ।'"[65]

''बाबु हरिश्चन्द्र भारतेन्दु की एक कहानी 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' तथा 'अपूर्ण मालवीय' उपन्यास के आधार पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह संभावना की है कि अगर वे कुछ दिन और जीवित रहते तो उपन्यास के प्रवर्तन का श्रेय शायद उन्हें ही दिया जाता ।''[66]

परंतु इस विषय में ओमप्रकाश शर्मा ने लिखा है – "इसमें आधुनिक उपन्यास के सभी गुण मौजूद हैं इसलिए कदाचित इसे प्रथम उपन्यास माना जाना चाहिए । लेकिन अधिकांश इसे अपूर्ण होने के कारण उपन्यास नहीं मानते और भारतेन्दु ने भी इसे उपन्यास न कह कर कहानी ही कहा है ।"[67]

ओमप्रकाश जी ने 'परीक्षा गुरु' को प्रथम उपन्यास की श्रेणी में रखते हुए लिखा है कि –

''श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरु' ही हिंदी का प्रथम उपन्यास माना जाता है। परीक्षा गुरु से पहले श्रद्धाराम फुल्लौरी द्वारा 'भाग्यवती' उपन्यास लिखा गया। 'भाग्यवती' उपन्यास सन् 1877 अर्थात् 'परीक्षा गुरु' से पाँच वर्ष पूर्व लिखा गया था। यह शिक्षाप्रद उपन्यास है । कुछ लोग 'भाग्यवती' को ही सुगठित, सौद्देश्य स्वाभाविक और गतिशील मानते हुए प्रथम उपन्यास कहते हैं। लेकिन कथा का उद्देश्य आदर्श की स्थापना होने के कारण सामयिक जीवन का वास्तविक चित्र उपस्थित नहीं करती है अतः यह उपन्यास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है ।'' [68]

इसके अतिरिक्त उपरोक्त बात को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है –

''लेखक (श्रीनिवास) ने पुस्तक की भूमिका में 25 नवम्बर 1884 तारीख अंकन की है । यह अंग्रेजी के ढंग का पहला मौलिक उपन्यास है । प्राचीन और मध्ययुगीन परंपराओं को त्यागकर एक नई सरणिका का उपयोग किया गया । लेखक को अंग्रेजी का ज्ञान होने के कारण, अंग्रेजी के उपन्यास तत्वों को ध्यान में रखकर, इस उपन्यास की रचना की गई होगी ।'' [69]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरु' को ही अंग्रेजी ढंग का प्रथम उपन्यास माना है । इस मत की पुष्टि-

''प्रताप नारायण टंडन, श्रीकृष्णलाल, डॉ. उषा पाण्डेय, डॉ. गोविन्द शर्मा, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी आदि विद्वानों ने की है ।'' [70]

अंततः आधुनिक काल के 'उपन्यास' की परिभाषा की कसौटी पर 'परीक्षागुरु' प्रथम उपन्यास के रूप में हमारे सामने आया है । 'रानी केतकी की कहानी' नये मानदण्डों की कसौटी पर न कहानी की श्रेणी में आती है, न उपन्यास की । शिवनारायण श्रीवास्तव ने भी अपना मत बदल कर अंततः परीक्षा गुरु का ही समर्थन किया है । भारतेन्दु का एक अपूर्ण उपन्यास 'कुछ आप बीती' – कुछ जग बीती को यह श्रेय अवश्य दिया गया कि उसने 'परीक्षा गुरु' के लिए आधार भूमि प्रस्तुत की । इस प्रकार आधुनिक उपन्यास के बीजारोपण का श्रेय भारतेन्दु को तो दिया गया लेकिन प्रथम उपन्यास 'परीक्षा गुरु' को ही स्वीकार किया गया है ।

2.3.2 हिंदी उपन्यास की पृष्ठभूमि

हिंदी उपन्यास के क्रमिक विकास को अध्ययन की सुविधा के लिए कई विद्वानों ने अपने-अपने विचारों के अनुरूप विभाजित किया है । परंतु अधिकांश विद्वानों ने हिंदी उपन्यास साहित्य को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है । जिसे हम विस्तारपूर्वक देखेंगे ।

1. भारतेन्दुयुगीन उपन्यासों की पृष्ठभूमि
2. द्विवेदीकालीन उपन्यासों की पृष्ठभूमि
3. प्रेमचन्दकालीन उपन्यासों की पृष्ठभूमि
4. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की पृष्ठभूमि

2.3.2.1 भारतेन्दु-युगीन उपन्यासों की पृष्ठभूमि

भारतेन्दु हरिश्चंद्र का जन्म संपन्न वैश्यकुल में संवत 1907 को और मृत्यु 35 वर्ष की अवस्था में संवत 1941 को हुई ।

संवत 1922 में ये अपने परिवार के साथ जगन्नाथ जी गये । उसी यात्रा में उनका परिचय बंग देश की नवीन साहित्यिक प्रगति से हुआ । उन्होंने बंगला में नये ढंग के सामाजिक, देश-देशांतर संबंधी ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक, उपन्यास आदि देखे और हिंदी में वैसी पुस्तकों के अभाव का अनुभव किया । संवत 1925 में इसका उन्होंने 'विद्यासुंदर नाटक' बंगला से अनुवाद करके प्रकाशित किया । इस अनुवाद में ही उन्होंने हिंदी गद्य के बहुत ही सुडौल रूप का आभास दिया । इसी वर्ष उन्होंने 'कविवचनसुधा' नाम की एक पत्रिका निकाली जिसमें पहले पुराने कवियों की कविताएँ छपा करती थीं पर पीछे गद्य लेख भी रहने लगे । 1930 में उन्होंने 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' नाम की एक मासिक पत्रिका निकाली । हिंदी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले पहल इसी 'चंद्रिका'

में प्रकट हुआ । जिस हिंदी को देश ने अपनी विभूति समझा, जिसको जनता ने उत्कंठापूर्वक दौड़कर अपनाया, उसका दर्शन इसी पत्रिका में हुआ ।

भारतेन्दु युग में हिंदी की अनेक नई तथा आधुनिक साहित्यिक विधाओं का जन्म हुआ इसी युग में इन विधाओं का स्वरूप और स्थित हुआ । उपन्यास भी इसका अपवाद नहीं है । भारतेन्दु युग के पूर्व उपन्यास साहित्य की कोई सुदीर्घ परंपरा नहीं थी। उस समय अनेक उपन्यास बंगला से अनूदित हुए । इन उपन्यासों के कारण एक उचित वातावरण तैयार कराने में भारतेन्दुजी अवश्य सफल हुए । इस युग में अधिकतर अनुवाद हुए, किन्तु कुछ मौलिक उपन्यास लिखे जाने की प्रेरणा भी लेखकों को अवश्य मिली स्वयं भारतेन्दु का ध्यान उपन्यास अनूदित करने तथा लिखने की ओर गया । उन्होंने खुद उपन्यास लिखने की अपेक्षा दूसरे लेखकों को अधिक प्रेरित किया । इस विषय में ओम प्रकाश शर्मा जी ने लिखा है - ''भारतेन्दु जी ने एक भी उपन्यास पूरा नहीं लिखा लेकिन इन्होंने ही वह आधार दिया जिससे उपन्यास कला के लेखन और अनुवाद को बल मिला । 'कादम्बरी', 'दुर्गेश नंदनी', 'राधारानी', 'स्वर्णलता' आदि का अनुवाद इनके ही प्रयास का प्रतिफल है । 'चन्द्रप्रभा' और पूर्णप्रकाश का अनुवाद भारतेन्दु ने ही किया । यह मराठी में अनूदित उपन्यास है । इन उपन्यासों ने हिंदी लेखकों का समुचित ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया तथा हिंदी उपन्यास की गतिविधि को बहुत समय तक के लिए निर्धारित कर दिया ।'' [71]

भारतेन्दुजी ने अनेक कथाएँ लिखी किन्तु उन कथाओं में एक भी उपन्यास कहलाने की अधिकारिणी नहीं हैं। ओमप्रकाश जी ने कहा है –

''भारतेन्दु की एक कहानी 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' जिसे वे पूरा न कर सके । यदि पूरी हुई होती तो वह एक आत्मकथात्मक उपन्यास होता । इस कहानी में आधुनिक उपन्यास के सभी गुण मौजूद हैं ।'' [72]

भारतेन्दु ने उपन्यास क्षेत्र में अनुवाद और मौलिक रचनाओं का जो सूत्रपात किया वह निरंतर पल्लवित होता चला गया और इसी का परिणाम यह हुआ कि हिंदी में अच्छे मौलिक उपन्यासों की रचना संभव हो पायी । परंतु हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास किसे माना जाय इस विषय में काफी मतभेद है। इस विषय पर हमने पूर्व ही चर्चा कर ली है। कुछ लोग 'परीक्षा गुरु' तथा कुछ लोग 'भाग्यवती' को हिंदी का प्रथम उपन्यास मानते हैं, किन्तु 'परीक्षा गुरु' को हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास मानना अधिक समीचीन होगा । इस काल में अनेक प्रकार के उपन्यास लिखे गए । परन्तु इसकी चर्चा करने के पूर्व हम भारतेन्दु युग की गतिविधियों पर प्रकाश डालेंगे ।

भारतेन्दु युग सन 1864 से 1900 ई. तक का काल है । इस काल में शासन सत्ता अनेक राजनीतिक परिवर्तनों के कारण ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथों से निकलकर महारानी विक्टोरिया के हाथों में आयी । ब्रिटिश शासन सत्ता की सुव्यवस्थित स्थापना हो जाने के कारण ही भारतीय राजनीति की इकाई

निर्धारित हुई। राजनीतिक परिवर्तनों के कारण पहले से ही चली आ रही कई योजनाओं से देश की सामाजिक चेतना के विकास का महत्वपूर्ण संबंध रहा। अंग्रेजों ने शिक्षा प्रणाली के प्रचार एवं प्रसार के माध्यम से भारतीयों को बौद्धिक दासता का भी पाठ पढ़ाया लेकिन पश्चिमी शिक्षा के प्रचार-प्रसार से भारतीय जीवन में एक नवीन बौद्धिक जागृति आई । भारतीयों में समाज सुधार और सर्वांगीण उन्नति की भावना पैदा हुई । ''भारतेन्दु युग में राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती और अन्य सुधारकों के प्रयास ने एक जबर्दस्त साहित्यिक आन्दोलन का रूप धारण किया । यह आन्दोलन अब केवल ब्रह्मसमाज और आर्य समाज का आन्दोलन नहीं रहा, बल्कि पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता की प्रतिस्पर्धा में उद्वेलित भारतीय समाज की चेतना का सामूहिक संघर्ष बन गया ।'' [73]

इसी युग में अंग्रेजी शासन के प्रति भारतीय में असंतोष निर्माण हुआ । इस असंतोष की अनेक प्रतिक्रियाओं ने राष्ट्रीय चेतना को जन्म दिया । पाश्चात्य सभ्यता की स्पर्धा में 'आर्य समाज' का जन्म हुआ था। समाज में प्रत्येक जाति, वर्ग और सम्प्रदाय संगठित होने लगा। इसमें सांस्कृतिक अवमूल्यन, आत्मोन्नति एवं आत्मपरिष्कार की भावना का आवेग नजर आता है । ''सन 1888 ई. के उपरान्त भारतेन्दु काल का हिंदी साहित्य में अवतरण हुआ, तो सबसे पहले साहित्यकारों का ध्यान शुद्ध हिंदी की ओर गया। उन्होंने हिन्दुस्तानी के विरूद्ध जनमत का निर्माण किया ।'' [74]

इस आन्दोलन की भूमिका में इतना आकर्षण निर्माण हुआ था कि कई लेखक तथा कवि सामने आने लगे थे ।

रोजगार और आजीविका के लिए सरकारी नौकरियों की आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं । शिक्षा के प्रसार ने सीमित दायरे में ही सही भारतीय चेतना को जाग्रत करने का काम किया। यही नहीं अंग्रेजी साहित्य को जानने और समझने का मौका भी मिला । संचार माध्यमों और यातायात सुविधा ने देश के सम्पर्क सूत्रों को बढ़ाने में मदद की । शिक्षा का प्रसार ब्रिटिश शासन ने शासन तंत्र को चलाने के लिए किया लेकिन वहीं साथ में दूसरी ऐसी शक्तियाँ भी उभरकर सामने आईं जिन्होंने देश की एकता और स्वतंत्रता को अपना लक्ष्य बनाया । भारी उद्योगों का आगमन, विदेशी सरकार द्वारा सामाजिक और राजनीतिक प्रतिबंधों को लागू करना, धार्मिक और साम्प्रदायिक भावनाओं से उठकर आम लोगों में राष्ट्रीय चेतना का विकास आदि सब ने मिलकर साहित्य और खासकर उपन्यास के लिए पृष्ठभूमि तैयार की ।

इन परिस्थितियों में ही हिंदी उपन्यास का आरंभ हुआ । भारतेन्दु युग को हिंदी उपन्यास का प्रथम काल कहा जा सकता है, इस युग में राष्ट्रीय नवोत्थान की चेतना ने जनजीवन में सामाजिक धार्मिक, आर्थिक वैषम्य की विवेचना की । इसी कारण हिंदी के सफल गद्य निर्माण की पीठिका स्थापित हुई । इस युग

में उपन्यास की जो मुख्य प्रवृत्तियाँ विकसित हुई उनमें सामाजिक, ऐतिहासिक, जासूसी तथा तिलस्मी आदि प्रमुख हैं ।

भारतेन्दु काल में सामाजिक उपन्यासों में 'भाग्यवती' और 'परीक्षागुरु' के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट-कृत 'रहस्यकथा' (1879), 'नूतन ब्रह्मचारी' (1886) और 'सौ अजान एक सुजान' (1892), राधाकृष्णदास कृत 'निस्सहाय हिंदू' (1890), लज्जाराम शर्मा कृत 'त्रिवेणी वा सौभाग्यश्री' (1890), और 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' (1899) तथा किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'त्रिवेणी वा सौभाग्यश्री' (1890) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी उपन्यासों का लक्ष्य समाज की कुरीतियों को सामने लाकर उनका विरोध करना और आदर्श परिवार एवं समाज की रचना का संदेश देना है । ये सभी उपन्यास उद्देश्यपूर्ण लिखे गये हैं और लेखकों ने प्रायः प्रारंभ में ही अपना उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है ।

सामाजिक उपन्यासों की तुलना में आलोच्य युग में ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम लिखे गये । इस क्षेत्र में किशोरीलाल गोस्वामी का नाम उल्लेखनीय है। इनके कुछ उपन्यासों के नाम इस प्रकार हैं- 'तारा', 'चपला', 'तरुण तपस्विनी', 'रजिया बेगम', 'लीलावती', 'लवंगलता', 'लखनऊ की कब्र' आदि। आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने इनके ऐतिहासिक उपन्यासों के विषय में लिखा है–

''गोस्वामी जी के ऐतिहासिक उपन्यासों से भिन्न-भिन्न समयों की सामाजिक और राजनीतिक अवस्था का अध्ययन और संस्कृत के स्वरूप का

अनुसंधान नहीं सूचित होता। कहीं-कहीं तो काल दोष तुरंत ध्यान में आ जाते हैं - जैसे वहाँ-जहाँ अकबर के सामने हुक्के या पेचवान रखे जाने की बात कही गयी है ।'' [75]

तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों में देवकीनंदन खत्री का नाम उल्लेखनीय है । इनकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं – 'चन्द्रकांता' (1882), 'चन्द्रकांता - संतति' (चौबीस भाग, 1896), 'नरेन्द्र मोहिनी' (1893), 'वीरेंद्र वीर' (1895) और 'कुसुमकुमारी' (1899) आदि। इनके 'चन्द्रकांता' और 'चन्द्रकांता संतति' नामक ऐयारी उपन्यास बहुत ही चर्चित उपन्यास थे । इन उपन्यासों की चर्चा चारों ओर इतनी फैली कि जो लोग हिंदी की किताबें नहीं पढ़ते थे वे भी इन नामों से परिचित हो गये । शुक्लजी ने इस संबंध में लिखा है –

''हिंदी साहित्य के इतिहास में बाबू देवकीनंदन का स्मरण इस बात के लिए सदा बना रहेगा कि जितने पाठक उन्होंने उत्पन्न किये उतने और किसी ग्रंथकार ने नहीं । 'चन्द्रकांता' पढ़ने के लिए न जाने कितने उर्दूजीवी लोगों ने हिंदी सीखी ।'' [76]

इन दो उपन्यासों को पढ़ चुकने पर कई लोग 'चन्द्रकांता' तथा 'चन्द्रकांता संतति' जैसी अन्य किताब ढूँढने में परेशान रहते थे । शुरू-शुरू में 'चन्द्रकांता' पढ़कर न जाने कितने नवयुवक हिंदी के लेखक हो गये । इनकी भाषा के संबंध में शुक्लजी ने कहा है-

"उन्होंने ऐसी भाषा का व्यवहार किया है जिसे थोड़ी हिंदी और थोड़ी उर्दू पढ़े लोग भी समझ लें।" [77]

इस युग के जासूसी उपन्यासों में गोपालराम गहमरी जी कृत 'अदभुत लाश' (1896) और 'गुप्तचर' (1899) उल्लेखनीय हैं। गहमरी जी ने भारतेन्दु-युग के अंतिम चरण में लिखना शुरू किया और लगभग 200 जासूसी उपन्यास लिखे, किंतु उनके बहुसंख्यक उपन्यास द्विवेदी युग की सीमा में लिखे गये हैं। जासूसी उपन्यासों में भी घटनाएँ रहस्य-रंजित होती थीं, किंतु उन्हें अधिक से अधिक विश्वसनीय बनाने की चेष्टा की जाती थी । रोमानी उपन्यासों में ठाकुर जगन्मोहन सिंह का 'श्यामास्वप्न' (1888) उल्लेखनीय है । इसमें श्यामा (ब्राह्मण कुमारी) और श्याम सुंदर (क्षत्रिय कुमार) की प्रेमकथा का स्वच्छंद शैली में चित्रण हुआ है ।

आलोच्य युग में बंगला और अंग्रेजी से उपन्यासों के अनुवाद की ओर भी यथेष्ट ध्यान दिया गया । सर्वाधिक अनुवाद बंगला भाषा से किये गये । उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में बंगला-साहित्य में बंकिमचंद्र चटर्जी (1838-1894), रमेशचंद्र दत्त (1848-1909), तारकनाथ गांगुली (1845-1891) आदि उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुए थे ।

उपर्युक्त उपन्यासों में सबसे महत्त्वपूर्ण एवं सशक्त धारा उन सामाजिक उपन्यासों की है, जिनका श्रीगणेश 'परीक्षागुरु' से हुआ था । अन्य उपन्यासों का

महत्त्व इतना ही है कि उनसे सामान्य जनता में हिंदी की लोकप्रियता बढ़ी । इस युग के सर्वप्रधान उपन्यास लेखक किशोरीलाल गोस्वामी जी माने गये हैं । गोस्वामी जी ने मानवीय प्रेम के विविध पक्षों के उद्घाटन में ही अपनी शक्ति का अपव्यय किया । वस्तुतः जीवन के यथार्थ को कला में ढालने वाले उपन्यासों की रचना का वातावरण अभी नहीं बन पाया था । इस शैली का आरंभ आगे चल कर द्विवेदी युग में हुआ ।

भारतेन्दु काल के प्रमुख उपन्यासकारों का संक्षिप्त में परिचय निम्नलिखित है ।

- **प्रमुख उपन्यासकार**

1 लाला श्रीनिवासदास – (1850-1887)

भारतेन्दु युग के सर्वोत्तम लेखकों में लाला श्रीनिवासदास का प्रमुख स्थान है । यह प्रतिभाशाली लेखक भी हैं । श्रीनिवासदास ने 'तप्ता संवरण', 'रणवीर प्रेम मोहिनी', 'प्रहलाद-चरित्र', 'संयोगिता-स्वयंवर' आदि नाटकों के साथ-साथ 'परीक्षा गुरु' शीर्षक सामाजिक उपन्यास की भी रचना की थी । उपन्यासकार ने इस उपन्यास की कथा में तत्कालीन राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओं को स्पर्श करते हुए दिल्ली के एक रईस मदनमोहन के जीवन के उतार-चढ़ाव को प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास में लेखक का उद्देश्य मदनमोहन और उसके

अनुरूप प्रचलित समाज को ब्रजकिशोर और उसकी संस्कृति की ओर आकर्षित करना है ।

2 किशोरीलाल गोस्वामी (1865-1932)

उपन्यासकार के रूप में किशोरीलाल गोस्वामी का स्थान महत्त्वपूर्ण है । गोस्वामी जी संस्कृत के अच्छे जानकार, साहित्य के मर्मज्ञ तथा हिंदी के पुराने कवि और लेखक थे । संवत 1955 में उन्होंने 'उपन्यास' मासिक पत्र निकाला और द्वितीय उत्थानकाल के भीतर 65 छोटे-बड़े उपन्यास लिखकर प्रकाशित किये । शुक्लजी ने इनके विषय में लिखा है - ''और लोगों ने भी मौलिक उपन्यास लिखे पर वे वास्तव में उपन्यासकार न थे । और चीजें लिखते-लिखते वे उपन्यास की ओर भी जा पड़े थे । पर गोस्वामीजी वहीं घर करके बैठ गये । एक क्षेत्र उन्होंने अपने लिए चुन लिया और उसी में रह गये ।''[78]

किशोरीलाल गोस्वामी कृत सामाजिक उपन्यास 'त्रिवेणी व सौभाग्यश्री' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे, जिनके नाम इस प्रकार हैं - 'तारा', 'चपला', 'रजिया बेग़म' आदि ।

3 बालकृष्ण भट्ट (सन् 1844-1914)

उस समय के विख्यात निबंध लेखक बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान एक सुजान' नामक मौलिक उपन्यास की रचना की । यह

उनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं । इन उपन्यासों में लेखक ने स्पष्ट किया है कि निष्कपट व्यवहार और धर्म परायण कृत्यों से पत्थर दिल व्यक्ति पसीज जाता है और कुकृत्य को भी त्याग देता है । उन्होंने अपने उपन्यास के माध्यम से विद्यार्थियों को शिक्षा देने तथा उनमें सुधार, नैतिकता लाने के लिए प्रयास किया है । 'सौ अजान एक सुजान' में भी उपदेश की ही प्रधानता है । भट्टजी का उद्देश्य स्पष्ट है कि - ''अन्त में हम अपने पढ़नेवालों को सूचित करते हैं कि आप लोगों में यदि कोई अबोध और अजान हो तो हमारे इस उपन्यास को पढ़ आशा करते हैं, सुजान बने....''[79]

4 देवकीनंदन खत्री (सन् 1861-1913)

हिंदी उपन्यास में देवकीनन्दन खत्री का महत्वपूर्ण स्थान है । इन्होंने फारसी के 'तिलस्महोशरूबा' का आधार लेकर तिलस्मी – ऐयारी उपन्यास लिखे। 'चन्द्रकांता' इनका पहला उपन्यास है । तथा 'चन्द्रकांता संतति' दूसरा । यह दो उपन्यास लिखकर उन्होंने हिंदी साहित्य में तहलका मचा दिया । हिंदी साहित्य के इतिहास में देवकीनन्दन खत्री की भाषा के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने लिखा है –

''उन्होंने ऐसी भाषा का व्यवहार किया जिसे थोड़ी हिंदी और थोड़ी उर्दू पढ़े लोग भी समझ लें ।''[80]

'चन्द्रकान्ता' में उपन्यास की नायिका विजयगढ़ की राजकुमारी चन्द्रकान्ता है । नौगढ़ के राजकुमार वीरेन्द्र सिंह उसके प्रेमी हैं । वह अपनी सखी चपला के साथ एक तिलस्म में फंस जाती है । राजकुमार अपने ऐयारों की सहायता से उसे मुक्त कराते हैं और अन्त में दोनों का मिलन होता है । 'चन्द्रकान्ता सन्तति' में महारानी चन्द्रकान्ता के दो पुत्रों की कथा वर्णित है । इन दो कृतियों के अतिरिक्त खत्री जी ने 'नरेन्द्र मोहिनी', 'वीरेन्द्र वीर' आदि कृतियाँ भी लिखीं।

5 **गोपालराम गहमरी** (1866-1946)

बाबू गोपालराम गहमरी हिंदी उपन्यास की इस शाखा के प्रमुख उपन्यासकार हैं। ''कई आलोचकों ने उन्हें हिंदी का 'कानन डायल' कहा है।''[81] सर्वप्रथम उन्होंने बंगला से एक जासूसी उपन्यास 'हीरे का मोल' सन् 1868 में अनूदित किया । उसके बाद उन्होंने 'अद्भुत लाश' (1896) 'गुप्तचर' (1899) जैसे उल्लेखनीय उपन्यास लिखे । गहमरी जी ने भारतेन्दु युग के अंतिम चरण में लिखना आरंभ किया और लगभग 200 जासूसी उपन्यास लिखे, किन्तु उनके बहुसंख्यक उपन्यास द्विवेदी युग की सीमा में लिखे गये हैं।

6 मेहता लज्जाराम शर्मा (सन् 1863-1931)

कुछ लेखक निबंधकार के रूप में सामने आए, कुछ जासूसी – ऐयारी उपन्यास लिखे, परन्तु लज्जाराम शर्मा उस युग के कुशल पत्रकारों में से थे ।

इन्होंने 'धूर्त रसिक लाल' तथा 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' नामक दो उपन्यास लिखे । दोनों ही उपन्यास मूलतः उपदेशात्मक हैं, जिनमें भारतीय संस्कृति एवम् आदर्शों की महत्ता बड़े ही स्थूल ढंग से प्रस्तुत की ।

7 राधाकृष्णदास (सन् 1865-1907)

राधाकृष्ण दास की ख्याति मूलतः नाटककार के रूप में है, परन्तु उन्होंने सोलह वर्ष की आयु में ही 'निस्सहाय हिन्दू' नामक एक उपन्यास लिखा था जो 1890 ई. में प्रकाशित हुआ । यह लेखक के किशोर वय की कृति है । अतः इसमें भावातिरेक का होना स्वाभाविक है । वैचारिक प्रौढ़ता का अभाव है । भारतेन्दु द्वारा प्रणीत 'भारत दुर्दशा' और 'भारत जननी' का प्रभाव इस पर स्पष्ट दिखता है । इसकी कथा-वस्तु गोरक्षा आन्दोलन से संबंधित है । इसमें भारतवासियों की अकर्मण्यता एवं उनकी दुरावस्था का चित्रण भी मिलता है ।

8 ठाकुर जगमोहन सिंह

भारतेन्दु मंडली के सदस्य ठाकुर जगमोहन सिंह का नाम हिंदी के इस प्रारंभिक विकास युगीन उपन्यासकारों में उल्लेखनीय है । इनका एकमात्र उपन्यास 'श्यामा स्वप्न' शीर्षक से उपलब्ध है । यह उपन्यास अपने ढंग की अनोखी रचना है । काव्यात्मकता और भावात्मकता इस उपन्यास की भाषा-शैली की मुख्य विशेषताएँ हैं । प्रकृति वर्णन भी इस उपन्यास में अतिशय रूप में मिलता है ।

उपरोक्त के अतिरिक्त भारतेन्दु युगीन उपन्यासकारों और उनकी औपन्यासिक कृतियों में गोकुलानंद प्रसाद लिखित 'कमला', हरिनारायण टंडन रचित 'चाचा का खून', रत्नचन्द्र प्लीडर का 'नूतन चरित्र', चुन्नीलाल खत्री का 'जबरदस्त की लाठी', विट्ठल दास लिखित 'प्रेम कुमारी' (3 भाग) तथा 'किस्मत का खेल', भुवनेश्वर मिश्र रचित 'धराऊ घटना' तथा 'बलवंत भूमिहार', रूपनारायण लिखित 'श्याम कुमारी', जगन्नाथ शरण लिखित 'नीलमणि', जयराम गुप्त लिखित 'कश्मीर पतन' तथा 'नवाबी परिस्तान', कार्तिक प्रसाद खत्री लिखित 'जया' तथा दीनानाथ का 'गृह चरित्र', रुद्रदत्त शर्मा लिखित 'अपूर्व संन्यासी', सुश्री सरस्वती गुप्ता लिखित 'राजकुमार' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

2.3.2.2 द्विवेदी कालीन उपन्यासों की पृष्ठभूमि

1901 से 1916 तक के काल को द्विवेदी युग के अंतर्गत रखा गया है । इस काल को 'पुनर्जागरण काल' के नाम से भी जाना जाता है। 'द्विवेदी युग' का नाम 'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी' के नाम पर रखा गया है । द्विवेदी जी का जन्म दौलतपुर, रायबरेली में 1864 ई. में हुआ था । वे अत्यंत परिश्रमी और कर्मनिष्ठ थे । आजीविका के लिए द्विवेदीजी ने रेलवे की नौकरी की, किन्तु उच्चाधिकारी से कुछ कहा-सुनी हो जाने के कारण इन्होंने त्यागपत्र दे दिया । साहित्य-साधना तो द्विवेजी नौकरी के दिनों में भी कर रहे थे, किन्तु

नौकरी छोड़ने के बाद तो ये पूरी तरह से हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा में जुट गये । सन् 1903 में ये 'सरस्वती' के संपादक बने और 1920 तक बड़े परिश्रम और लगन से यह कार्य करते रहे । 'सरस्वती' के संपादक के रूप में इन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य के उत्थान के लिए जो काम किया वह सदा याद रहेगा । इन्होंने ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली का प्रचलन किया । जिससे हिंदी साहित्य में काफी सुधार आया । इसके अतिरिक्त द्विवेदीजी ने भाषा का स्वरूप व्यवस्थित करने के साथ हिंदी गद्य को अनेक प्रकार की शैलियाँ भी दीं। जिसकी चर्चा हम पूर्व ही कर चुके हैं । द्विवेदी जी ने अपने युग के साहित्य को आदर्श विषय और भाषा की दृष्टि से विशेष रूप से प्रभावित किया । डॉ. धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं -

''साहित्यिक रूपों और विभिन्न प्रवृत्तियों की दृष्टि से गद्य का विकास इतना द्रुत गति से होने लगा कि साहित्य में पद्य की प्रधानता जाती रही और उसका स्थान गद्य ने ले लिया । प्रत्येक क्षेत्र में साहित्यिक क्रांति हुई । गद्य की इस असाधारण प्रगति के फलस्वरूप द्विवेदी युग को यदि हम 'गद्य-युग' के नाम से अभिहित कर लें तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी ।''[82] मौलिक रचना की दृष्टि से द्विवेदी जी की सेवा-साधना का महत्व अधिक नहीं है । बल्कि साहित्य की कई भूली सामग्री एकत्र करने और अनेक साहित्यिकों को साहित्य सेवा के लिए अनुप्रेरित करने में उनका महत्वपूर्ण स्थान है । इन्होंने अपने युग के लेखकों को संस्कृत बंगला तथा अंग्रेजी ग्रंथों के अनुवाद करने की

प्रेरणा दी । जिससे हिंदी गद्य साहित्य में मौलिक उपन्यास तथा अनूदित उपन्यासों का ढेर-सा लग गया । इसकी चर्चा हम आगे करेंगे ।

द्विवेदी युगीन उपन्यासों की चर्चा करने के पूर्व अब मैं यहाँ द्विवेदी युग की गतिविधियों पर संक्षिप्त में प्रकाश डालूँगी ।

इस युग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्य पढ़े लिखे लोगों के मनोरंजन का साधन न रहकर समाज के विशाल क्षेत्र में अवतरित हुआ । समाज और साहित्य का उत्तरोत्तर संबंध बढ़ने के कारण साहित्य जन-चेतना का एक बहुत ही आवश्यक अंग बन गया । 19वीं शताब्दी की सतत जागरूकता ने नवीन प्राण-प्रतिष्ठा प्राप्त की एवं मुख्य रूप से साहित्य की सार्वभौमिक सत्ता पूरे समाज की चेतना जागृत करने लगी । इस नवीन सामाजिक चेतना ने जनता को अपने प्राचीन गौरव पर गर्व करना सिखाया । वैज्ञानिक परिवर्तनों ने समाज का काया पलट कर दिया और बुद्धिवादी दृष्टि प्रधान हो उठी । इस युग में राष्ट्रीय स्वाभिमान की प्राण प्रतिष्ठा हुई तथा पाश्चात्य तत्वों का असर रहा । धीरे-धीरे स्वकीय भावना जागरण होने लगी । सन् 1902 ई. के उपरांत भारत में प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालय शिक्षा में सुधार एवं प्रसार के लिए आयोग बैठाए गये । अंग्रेजी शिक्षा का महत्व बढ़ा दिया गया, परिणाम यह हुआ कि सरकारी नौकरी पाने तथा बुद्धिमान समझे जाने के लिए अंग्रेजी शिक्षा अनिवार्य समझी जाने लगी । इसमें शासक सफल हुए अंग्रेजी शिक्षा का

फल यह रहा कि उच्च शिक्षित भारतीय विदेशी राजनेताओं एवं दार्शनिकों के विचारों से संपर्क में आये और स्वातंत्र्य तथा राष्ट्रीय भाव में भी दीक्षित हुए । इस नवीन शिक्षा पद्धति ने मध्य वर्ग को जन्म दिया । यह नया मध्य वर्ग ही इस युग की चेतना का प्रमुख संवाहक रहा, "क्योंकि इस मध्य वर्ग ने यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की और वह बौद्धिक पिपासा और प्रगति की आकांक्षा से ओतप्रोत था और उसी पर समाज के नवनिर्माण का उत्तरदायित्व था, क्योंकि उच्च वर्ग स्थान-च्युत आर्थिक विषमताओं से पीड़ित और नवीन प्रभावों से दूर था और बहुसंख्यक निम्न वर्ग अशिक्षित अन्धकार में लिप्त, फलतः कुछ कर सकने में असमर्थ था ।"[83]

जैसा कि ऊपर बताया गया है उच्चवर्ग क्रमशः खोखला होता जा रहा था। सामन्तवादी मूल्य टूट रहे थे । दूसरी ओर बहुजन समाज प्राचीन रूढ़िवादिता से पीड़ित था । समाज में स्त्रियों की स्थिति सोचनीय थी । वह पुरुषों की चरणदासी मात्र रह गई थी। बालविवाह, सती प्रथा, वेश्यावृत्ति का समर्थन एवं विधवा-विवाह निषेध आदि अनेक सामाजिक कुरीतियाँ समाज में व्याप्त थी । परन्तु आधुनिक नवीन शिक्षा पद्धति, संचार माध्यम, रेल, तार आदि वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप भारतीय जीवन की स्थिति में चौगुना बदलाव आने लगा था ।

ओमप्रकाश शर्मा ने लिखा है – "शिक्षा का प्रसार ब्रिटिश शासन ने शासन तंत्र को चलाने के लिए किया लेकिन वहीं साथ में दूसरी ऐसी शक्तियाँ भी उभरकर सामने आईं जिन्होंने देश की एकता और स्वतंत्रता को अपना लक्ष्य बनाया। भारी उद्योगों का आगमन, विदेशी सरकार द्वारा सामाजिक और राजनीतिक प्रतिबंधों को लागू करना, धार्मिक और साम्प्रदायिक भावनाओं से उठकर आम लोगों में राष्ट्रीय चेतना का विकास आदि सबने मिलकर साहित्य और खासकर उपन्यास के लिए पृष्ठभूमि तैयार की ।"[84]

वैसे भी आर्य समाज, ब्रह्मसमाज इंडियन नेशनल कांग्रेस तथा थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना से भारतीय जनजीवन में पुनर्जागरण आन्दोलन चल रहा था । तथा पुनरुत्थान की प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी थी । इंडियन नेशनल कांग्रेस ने भारत में राष्ट्रीय भावों का उदय किया । द्विवेदी-युग में ही सर्व श्री लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, गोपाल कृष्ण गोखले आदि नेताओं तथा समाजसेवियों ने उनकी आत्मविस्मृत भावनाओं को उत्तेजित किया। बाल गंगाधर तिलक ने सन् 1905 की बनारस कांग्रेस अधिवेशन में 'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा लगाया । इसका फल यह हुआ कि शिक्षित समुदाय तो जागृत हुआ ही किन्तु ऐसे लोगों का भी ध्यान आकर्षित किया जो सरकारी थे और वे हिंदी की उपेक्षा करते थे।

इसी काल में देश-विदेश में कुछ प्रेरक घटनाएँ भी घटीं जिन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य को शक्ति एवं गति प्रदान की । जापान और रूस युद्ध (सन् 1905 ई.) बंग विच्छेद से उत्पन्न स्वदेशी आन्दोलन एवं प्रथम विश्वयुद्ध (सन 1914-18 ई.) ऐसी घटनाओं का प्रमुख स्थान है । जापान और रूस के युद्ध में जापान की जीत हुई । उस युद्ध ने मनुष्य के आर्थिक जीवन को ही नहीं उद्वेलित किया बल्कि पश्चिमी यूरोप की मानसिक एवं शारीरिक शक्ति भी इससे प्रताड़ित हुई । हिंदी साहित्य पर इन सभी घटनाओं का प्रभाव स्पष्ट रूप से नहीं पड़ा किन्तु मानवतावादी दृष्टियों का आविर्भाव प्रारंभ हुआ ।

इस प्रकार द्विवेदी-युग भारतीय जन-जीवन में हो रहे व्यापक परिवर्तनों का काल है । इस युग में कलात्मक तथा साहित्यिक रूप से भी सामाजिक पुनरुत्थानवादी आन्दोलन का प्रेरक था । साहित्यकार एवं पत्रकारों ने शिक्षित वर्ग में सांस्कृतिक अंतर्दृष्टि और राजनीतिक जागरूकता की वैचारिक जागृति निर्माण की। द्विवेदी युग का सन् 1900-1908 ई. तक का साहित्य हिंदी के अराजकता का साहित्य माना जाता है और इस अचानक परिवर्तनों से लोगों को आघात सा लगा और जिसके मन में जो बात आई वही लिखता गया था । इसलिए सन् 1908 ई. के सामाजिक परिवेश ने गद्य लेखकों को अभ्यास और आदर्श रचनाकारों के अनुकरण की प्रेरणा द्विवेदी जी ने दी । सन् 1908 ई. से सन् 1916 तक का काल साहित्यिक व्यवस्था का काल है । कुछ साहित्यिक,

साहित्य के आदर्श प्रतिमाओं के लिए संस्कृत का प्राचीन आदर्श सामने रखना चाहते थे और कई साहित्यिक पाश्चात्य रूप के प्रशंसक थे । द्विवेदी जी ने गद्य साहित्य में दोनों प्रवृत्तियों में सामंजस्य स्थापित किया और प्रतिभाशाली साहित्यकारों को प्रोत्साहित किया ।

द्विवेदी काल कथा-साहित्य की दृष्टि की तुलना में समृद्ध है । किन्तु इस क्षेत्र में लेखकों और पाठकों की प्रवृत्ति कुतूहल, रहस्य और रोमांच के माध्यम से मनोरंजन करने में अधिक रही है । सामाजिक जीवन की यथार्थ समस्याओं को लेकर गंभीर उपन्यासों की रचना इस युग में कम दिखाई देती है। द्विवेदीयुगीन उपन्यासों को पाँच वर्गों में रखा जा सकता है – तिलस्मी ऐयारी उपन्यास, जासूसी उपन्यास, सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास और अनूदित उपन्यास।

तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों की परंपरा देवकीनंदन खत्री (1861-1913) द्वारा भारतेन्दु युग में आरंभ की गई थी और द्विवेदी युग में भी यह परंपरा जीवित रही । खत्री जी के 'काजर की कोठरी' (1902), 'अनूठी बेगम' (1905), 'गुप्त गोदान' (1906), 'भूतनाथ' – प्रथम छ भाग (1906) आदि उपन्यास इसी युग में प्रकाशित हुए । खत्री जी की परंपरा का निर्वाह हरेकृष्ण जौहर ने 'मयंक मोहिनी या मायामहल' (1901), 'कमलकुमारी' (1902) आदि तिलस्मी उपन्यासों की

रचना द्वारा किया । आगे चल कर देवकीनंदन खत्री के सुपुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री ने 'भूतनाथ' के शेष भागों को लिख कर इस परंपरा को आगे बढ़ाया ।

जासूसी उपन्यासों का आरंभ गोपालराम गहमरी (1866-1946) ने किया था । गहमरी जी अंग्रेजी के प्रसिद्ध जासूसी उपन्यासकार आर्थर कानन डायल (1859-1930) से प्रभावित थे । उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'ए स्टडी इन स्कारलेट' (1887) को उन्होंने 'गोविन्दराम' (1905) शीर्षक से हिंदी में अनूदित भी किया। भारतेन्दु काल की तरह द्विवेदी काल में भी गहमरी जी के जासूसी उपन्यास अत्यंत लोकप्रिय हुए । कई आलोचकों ने उन्हें हिंदी का 'कानन डायल' कहा है । 'सरकटी लाश' (1900), 'चक्करदार चोरी' (1901), 'जासूस चक्कर में' (1906) आदि उनके प्रसिद्ध उन्यास हैं। गहमरी जी के अतिरिक्त रामलाल वर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी और जयरामदास गुप्त ने भी इस क्षेत्र में कुछ प्रयोग किये, किन्तु सर्वाधिक ख्याति गहमरी जी को ही प्राप्त हुई ।

अद्भुत घटनाप्रधान उपन्यासों की रचना तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों से भिन्न तकनीक पर की जाती थी । इसमें इसी लोक के किसी रहस्यमय कोने का उद्घाटन किया जाता था । इनकी रचना प्रेरणा रेनाल्ड्स – कृत 'मिस्ट्रीज ऑफ द कोर्ट ऑफ लंदन (1969)' के अनुवाद 'लंदन-रहस्य' से प्राप्त हुई थी । विट्ठलदास नागर का 'किस्मत का खेल' (1905), बांकेलाल चतुर्वेदी का 'खौफ़नाक खून' (1912), निहालचंद वर्मा का 'प्रेम का फल था मिस जौहरा'

(1913), प्रेमविलास वर्मा का 'प्रेममाधुरी या अनंगकांता' (1915) और दुर्गाप्रसाद खत्री का 'अद्‌भुत भूत' (1916) इस शैली के मुख्य उपन्यास हैं ।

द्‌विवेदी-युग के सामाजिक उपन्यासकारों में लज्जाराम शर्मा (1863-1931), किशोरीलाल गोस्वामी (1865-1932), अयोध्या सिंह उपाध्याय (1865-1941), ब्रजनंदन सहाय, राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह और मन्नन द्‌विवेदी (1884-1921) उल्लेखनीय हैं। लज्जाराम शर्मा के 'आदर्श दंपति' (1904), 'बिगड़े का सुधार अथवा सती सुखदेवी' (1907) और 'आदर्श हिंदू' (1914), उपन्यासों का विशेष महत्व है । किशोरीलाल गोस्वामी के 'लीलावती का आदर्श सती' (1901), 'चपला वा नव्य समाज' (1903-1904), 'पुनर्जन्म वा सौतिया डाह' (1907), 'माधवी माधव वा मदन मोहिनी' (1903-1910) और 'अंगूठी का नगीना' (1918) उपन्यासों को विशेष ख्याति प्राप्त हुई थी । अयोध्यासिंह उपाध्याय में उपन्यास लेखन की प्रतिभा नहीं थी । इनके 'अधखिला फूल' (1907) में धार्मिक अंधविश्वासों का कुपरिणाम दिखाया गया है । ब्रजनंदन सहाय के 'सौंदर्योपासक' (1911) और 'राधाकांत' (1912) – ये दो उपन्यास अधिक प्रसिद्‌ध हुए । इनके उपन्यास भावप्रधान हैं, जिसका कारण संभवतः यह है कि ये बंगला के भावुकतापूर्ण एवं मर्मस्पर्शी प्रेमप्रधान उपन्यासों से प्रभावित थे । इस युग की अन्य रचनाओं में मन्नन द्‌विवेदी कृत 'रामलाल' (1917) में ग्रामीण जीवन का

सजीव और यथार्थ चित्रण मिलता है तथा राधिकारमणप्रसाद सिंह का ‘नवजीवन व प्रेमलहरी’ (1916) प्रेमाकुलतापूर्ण भावात्मक उपन्यास हैं।

इस युग के सामाजिक उपन्यासों में सुधारवादी उपदेश प्रधान दृष्टिकोण मिलता है। यह सुधारवाद की प्रायः दो कोटियों का है – आर्यसमाजी और सनातनी । किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जाराम शर्मा और गंगाप्रसाद गुप्त सनातन धर्म के समर्थक थे । आर्यसमाज के नवीन सुधारवादी आंदोलन के विरुद्ध होते हुए भी ये लेखक नैतिक जीवनदृष्टि की प्रतिष्ठा चाहते थे । गोस्वामी जी ने सती-साध्वी देवियों के आदर्श प्रेम के साथ ही अवैध प्रेम, विधवाओं के व्यभिचार, वेश्याओं के कुत्सित जीवन और देवदासियों की विलासलीला का भी चित्रण किया है । उनका उद्देश्य नारकीय कुत्सित जीवन के दुष्परिणाम दिखा कर लोगों को उच्च नैतिक जीवन में प्रवृत्त करना था, वैसे निम्न कोटि के वासनापरक चटकीले प्रेम-प्रसंगों के प्रभाव से पाठकों के पथभ्रष्ट होने का खतरा भी उनके उपन्यासों में कम नहीं है।

प्रस्तुत काल में सामाजिक उपन्यासों की तुलना में ऐतिहासिक उपन्यास कम लिखे गए । ऐतिहासिक उपन्यास प्रायः मुस्लिमकाल के इतिहास से सामग्री लेकर लिखे गये । परन्तु इसमें इतिहास तत्त्व की कमी थी । लेखकों ने इतिहास की ऐसी घटनाओं का चयन किया है, जो पाठकों के कुतूहल एवं रहस्य-रोमांच-वृत्ति को पुष्ट कर सकें । किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास

गुप्त और मथुराप्रसाद शर्मा इस काल के उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं । किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'तारा वा क्षात्रकुलकमलिनी' (1902) 'सुल्ताना 'रजिया बेगम' व 'रंगमहल में हलाहल' आदि इस युग के चर्चित ऐतिहासिक उपन्यास हैं । गंगाप्रसाद गुप्त के ऐतिहासिक उपन्यासों में 'नूरजहां' (1902), 'कुमारसिंह सेनापति' (1903), जयरामदास गुप्त कृत 'काश्मीर-पतन' (1907), 'नवाबी परिस्तान वा वाज़िद अली शाह' (1909), 'मल्का चांद बीबी' (1909) आदि उपन्यास किशोरीलाल गोस्वामी की परंपरा में आते हैं । इस युग के मुख्य उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी (1865-1932) हैं। परन्तु वे अपने उपन्यासों में कहीं भी ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि करने में सफल नहीं हुए । डॉ. नगेन्द्र ने इनके उपन्यासों के विषय में लिखा है –

''इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास-सम्मत सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों का चित्रण नहीं हुआ है तथा अनेक स्थलों पर कालदोष भी आ गया है ।''[85]

मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त अनूदित उपन्यास भी इस युग में काफी देखने को मिलते हैं । खास करके अंग्रेजी और बंगला से बहुत से उपन्यास अनूदित हुए । जैसे कि गंगाप्रसाद गुप्त ने रेनॉल्ड के 'लब्ज़ ऑफ द हेयर' का 'रंगमहल' (1904) नाम से, जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' ने डिफ़ो के 'राबिन्सन क्रूसो' का इसी नाम से, दुर्गाप्रसाद खत्री ने विक्टर ह्यूगो के 'लो मिजरेबल' का

‘अभागे का भाग्य’ (1914-1915) नाम से, महावीर प्रसाद पोद्दार ने स्टो के ‘अंकल टॉम्स केबिन’ का ‘टाम काका की कुटिया’ (1916) नाम से अनुवाद किया । बंगला भाषा से अधिक अनुवाद हुए जो इस प्रकार हैं। ईश्वरीप्रसाद शर्मा ने दामोदर मुखोपाध्याय के, किशोरीलाल गोस्वामी ने बंकिमचंद्र के, गोपालराम गहमरी ने पंचकौडी डे के तथा जनार्दन प्रसाद झा ‘द्विज’ ने रवींद्रनाथ ठाकुर और रमेशचन्द्र दत्त के कई उपन्यासों के अनुवाद प्रस्तुत किये। यह सभी अनुवाद कौतुक, रहस्य और रोमांच प्रधान उपन्यासों के ही हुए ।

इस प्रकार, द्विवेदी-युग में हिंदी उपन्यासकार मौलिक साहित्य रचना के साथ-साथ अनुदित साहित्य के क्षेत्र में भी क्रियाशील रहा । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से ही हिंदी उपन्यासों के अनुवाद की परंपरा आरंभ हो गई थी । सन् 1901 ई. से लेकर लगभग दो शताब्दियों तक अंग्रेजी, बंगला, उर्दू, मराठी आदि भाषाओं से अनेक उपन्यास हिंदी भाषा में अनूदित किये गये । इस प्रकार से द्विवेदी युग में मौलिक तथा अनूदित साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय गतिशीलता रही है । तिलस्मी, जासूसी, ऐतिहासिक सामाजिक आदि औपन्यासिक प्रवृत्तियों का द्विवेदी युग में समान रूप से विकास हुआ है। भारतेन्दु-युग की भाँति द्विवेदी युग के अधिकांश उपन्यास मनोरंजन तथा समाजसुधार के उद्देश्य से लिखे गये हैं। इसके साथ ही यथार्थपरक दृष्टिकोण से भी उपन्यास लिखे गये हैं।

द्विवेदी काल के प्रमुख उपन्यासकारों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है।

- **प्रमुख उपन्यासकार**

1 अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध (1865-1941)

द्विवेदी-युग में अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जी का नाम उल्लेखनीय है । साहित्य के क्षेत्र में 'हरिऔध' जी का महत्त्व मुख्यतः उनकी 'प्रिय प्रवास' तथा 'वैदेही बनवास' नामक काव्य कृतियों के कारण है। अन्य भाषाओं से, उन्होंने हिंदी में कुछ उपन्यासों का अनुवाद भी किया था । 'वेनिस का बांका' तथा 'रिपवान विकिल' के नाम से इन्होंने दो उपन्यास अनूदित किये । मौलिक उपन्यास के क्षेत्र में भी हरिऔध जी का महत्वपूर्ण स्थान है । 'हरिऔध' जी ने 'ठेठ हिंदी का ठाठ' या 'देवबाला' (सन् 1899 ई.) तथा 'अधखिला फूल' (सन् 1907), दो सामाजिक उपन्यास लिखे । 'ठेठ हिंदी का ठाठ' या 'देवबाला' उपन्यास में हिन्दू परिवारों की कुरूढियों एवं सामाजिक विषमता का विदारक चित्र प्रस्तुत किया गया है और 'अधखिला फूल' उपन्यास में कर्मकाण्ड तथा अंधविश्वास का विरोध किया है । साथ ही सत्य, असत्य के प्रति संघर्ष और अन्त में सत्य की विजय एवं असत्य की हार बताया गया है । लेखक ने कर्मफल में विश्वास किया है और अंधविश्वास की खिल्ली उड़ाई है ।

2 श्री लज्जाराम शर्मा

द्विवेदी युग के बहुचर्चित प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री लज्जाराम शर्मा हैं। इन्होंने भारतेन्दु काल में भी दो उपन्यास लिखे हैं। इस काल में भी इन्होंने 'आदर्श दम्पत्ति' (सन् 1904), 'हिन्दू गृहस्थ' (सन् 1965), 'बिगड़े का सुधार' (सन् 1907), 'आदर्श हिन्दू' (1914-15) आदि प्रसिद्ध उपन्यास लिखे । उपर्युक्त सभी उपन्यास हिन्दू गौरव की भावना से चर्चित हैं। इन उपन्यासों में जो कथानक प्रस्तुत किये गये हैं, वे हिन्दू परिवार, शिक्षा तथा मर्यादा आदि से संबंधित हैं।

3 **किशोरीलाल गोस्वामी**

गोस्वामी जी भारतेन्दुयुगीन उपन्यासकार हैं। तथा द्विवेदी युग में भी उन्होंने अनेक सामाजिक उपन्यास लिखे । इनके सामाजिक उपन्यासों में 'लीलावती का आदर्श सती' (1901), 'चपला वा नव्य समाज' (1903-1904), 'पुनर्जन्म वा सौतिया दाह' (1907), 'अँगूठी का नगीना' (1918) आदि को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है । इन्होंने सामाजिक उपन्यासों के अतिरिक्त ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना भी की । 'तारा वा क्षात्रकुलकमलिनी' (1902), 'सुल्ताना रज़िया बेगम' वा 'रंगमहल में हलाहल' (1904), 'मल्लिका देवी या बंग-सरोजिनी' (1905) आदि आलोच्य युग के चर्चित ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

4 **देवकीनन्दन खत्री**

देवकीनन्दन खत्री जी भी भारतेन्दुयुगीन उपन्यासकार थे । उन्होंने तिसल्मी-ऐयारी उपन्यासों की परंपरा भारतेन्दुयुगीन में आरंभ की थी और आलोच्य युग में यह परंपरा जीवित रही । खत्री जी के 'काजर की कोठरी' (1902), 'अंगूठी बेगम' (1905), 'गुप्त गोदना' (1906), 'भूतनाथ' प्रथम छह भाग (1906) आदि उपन्यास इसी युग में प्रकाशित हुए। आगे चलकर देवकीनंदन खत्री के सुपुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री ने 'भूतनाथ' के शेष भागों को लिखकर इस परंपरा को आगे बढ़ाया ।

5 गोपालराम गहमरी

जासूसी उपन्यास के अंतिम चरण का प्रवर्तन गोपालराम गहमरी ने भारतेन्दु युग में ही कर दिया था । इस युग में भी इन्होंने बहुसंख्यक उपन्यास लिखे। जिनके नाम इस प्रकार हैं - 'चक्करदार चोरी' (1901), 'जासूस की भूल' (1901), 'जासूस पर जासूसी' (1904), 'जासूस चक्कर में' (1906), 'गुप्तभेद' (1913), 'जासूस की ऐयारी' (1914) आदि । ये सभी उनके प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय उपन्यास हुए।

6 ब्रजनन्दन सहाय

इन्होंने हिंदी के अतिरिक्त बंगला भाषा का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। उपन्यास के अतिरिक्त इन्होंने काव्य और नाटक आदि भी लिखे हैं । उपन्यास क्षेत्र में इनकी मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध हैं। बंगला

से अनूदित उपन्यासों में 'चन्द्रशेखर', 'बूढ़ा वर', 'सप्तम प्रतिमा', 'कमलाकांत का इजहार', 'रजनी' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सहायजी द्वारा लिखित मौलिक उपन्यासों में 'राजेन्द्र मालती', 'अद्भुत प्रायश्चित', 'सौंदर्योपासक', 'राधाकांत', 'लालचीन', 'विश्व दर्शन' आदि प्रमुख हैं। इनके उपन्यास मात्र मनोरंजन के लिये नहीं लिखे गये थे, वरन् सामाजिक और ऐतिहासिक स्वरूप का परिचय प्राप्त कराने के लिये उनकी रचना हुई थी ।

7 **दुर्गाप्रसाद खत्री**

पूर्ववर्ती युग के सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यासकार श्रीदेवकीनन्दन खत्री के सुपुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री ने भारतेन्दुयुगीन औपन्यासिक प्रवृत्तियों का प्रसार करते हुए अनेक जासूसी, तिलस्मी उपन्यासों की रचना की । उनके उपन्यासों में 'अनंगपाल', 'उपन्यास कुसुम', 'अभोग का भाग्य', 'स्वर्णपुरी', 'सागर सम्राट', 'सफेद शैतान' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । इन उपन्यासों में लेखक ने एक ओर तो जासूसी और तिलिस्मी उपन्यासों की परंपरा का प्रसार किया वहीं उनमें क्रान्तिकारी उपन्यासों की परंपरा का प्रवर्तन भी किया है। इनके साथ ही उनमें क्रान्तिकारी भावनाओं के आधार पर राष्ट्रीय चेतना के जागरण का संदेश भी मिलता है ।

8 **गंगाप्रसाद गुप्त**

गुप्तजी काशी के निवासी थे इन्होंने स्वतंत्र रूप से अध्ययन करते हुए हिंदी, बंगला, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी भाषाओं का अध्ययन किया । सर्वप्रथम इन्होंने 'नूरजहाँ' नामक एक मौलिक उपन्यास की रचना की तथा 'पूना में हलचल' शीर्षक से एक रचना का अनुवाद भी किया । सम्पादन के क्षेत्र में इन्होंने उल्लेखनीय योगदान दिया और 'मित्र', 'भारत जीवन', 'हिंदी केशरी', 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' तथा 'हिंदी साहित्य' नामक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया । गुप्तजी ने अंग्रेजी के 'द यंग फिशरमैन' का अनुवाद 'किले की रानी' शीर्षक से किया था । इसके अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाओं में 'हवाई नाव', 'वीर पत्नी', 'कुमार सिंह सेनापति', 'कुंवर सिंह', 'हम्मीर', 'कृष्णकांता', 'लक्ष्मी देवी' आदि उल्लेखनीय हैं। गुप्तजी की रचनाओं से यह स्पष्ट है कि उनके विचारों पर समकालीन मान्यताओं का ही अधिक प्रभाव था ।

उपरोक्त के अतिरिक्त इस युग के अन्य प्रमुख उपन्यासकारों और उनकी औपन्यासिक रचनाओं में उमरावसिंह गुप्त लिखित 'आदर्श बहू', 'भाई बहन' तथा 'प्रेमलता', केदारनाथ शर्मा कृत 'तारामति', चन्द्रसेन जैन कृत 'बुढ़ापे का ब्याह', देवराज लिखित 'कर्कशा सास', अमृतलाल चक्रवर्ती लिखित 'सती सुखदेवी', जयन्ती प्रसाद उपाध्याय लिखित 'पृथ्वीराज चौहान', रामप्रसाद लाल रचित 'हम्माम का मुर्दा', शंकरदा श्रीवास्तव लिखित 'मदन रंजनी', लोचन प्रसाद पाण्डेय का 'दो मित्र', रुद्रदत्त शर्मा का 'स्वर्ग में महासभा', रामजीदास वैश्य कृत्य

'फूल में काँटा' और धोखे की टट्टी, कृपाराम महेता कृत 'माता का उपदेश', नाथूराम प्रेमी लिखित 'फूलों का गुच्छा', हरिकृष्ण कोहली 'जोहर' लिखित 'कुसुमलता', 'डाकू', 'जादूगर' आदि उल्लेखनीय हैं।

2.3.2.3 प्रेमचन्दकालीन उपन्यासों की पृष्ठभूमि

प्रेमचन्द के साहित्य जगत में प्रवेश करने के साथ ही हिंदी उपन्यासों में एक नया मोड़ आता है, बल्कि यों कहा जाए कि वास्तविक अर्थों में उपन्यास-युग आरंभ होता है। उपन्यास साहित्य की सृष्टि जिस उद्देश्य को लेकर हुई थी उस उद्देश्य की पूर्ति प्रेमचन्द से पूर्व के उपन्यासों द्वारा नहीं हुई थी। प्रेमचन्द पूर्व हिंदी उपन्यासों के पाठक तिलस्म, जासूसी और रोमांस की दुनिया की सैर कर रहे थे। वह दुनिया वास्तविक दुनिया से अलग स्वप्नलोक की दुनिया थी । स्वयं प्रेमचन्द ने लिखा है-

''इन आख्यानों का उद्देश्य केवल मनोरंजन था और हमारे अद्भुत रसप्रेम की तृप्ति। साहित्य का जीवन से कोई लगाव है यह कल्पनातीत था ।''
86

प्रेमचन्द जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से उस दुनिया का परिचय दिया जो हमारी जानी-पहचानी थी, हमारे जीवन से घनिष्ठ रूप से संबद्ध थी । उन्होंने हिंदी-कथा साहित्य को 'मनोरंजन' के स्तर से उठा कर जीवन के साथ सार्थक रूप में जोड़ने का काम किया । चारों ओर फैले हुए जीवन और अनेक

सामयिक समस्याओं – जमींदारों, पूंजीपतियों और सरकारी कर्मचारियों द्वारा किसानों का शोषण, निर्धनता, अशिक्षा, अंधविश्वास, दहेज की कुप्रथा, घर और समाज में नारी की स्थिति, वेश्याओं की जिन्दगी, विधवा-समस्या, अस्पृश्यता, मध्यमवर्ग की कुंठाएँ आदि ने उन्हें उपन्यास-लेखन के लिए प्रेरित किया था । प्रेमचन्द ने इन सभी समस्याओं और जीवन के विभिन्न पहलुओं को अपने उपन्यासों में स्थान दिया ।

उपन्यास के विषय-चयन में प्रेमचन्द ने लेखक की रूढ़ि-मुक्त मौलिक दृष्टि पर बल दिया है । ‘‘उनके मत में उपन्यासकार को अपने पूर्ववर्ती साहित्य में वर्णित रूढ़ विषयों को ही अपना उपजीव्य नहीं बनाना चाहिए । यह परंपरा का अनुसरण मात्र होगा, जिससे समाज की प्रगति में वह कोई योग नहीं दे सकेगा । अतः समाजोत्थान के लिए वह नवीन विषयों की खोज करे, जो अतीत के बोझ, प्राचीन रूढ़ियों को त्यागकर ही सम्भव है। उसे चाहिए कि वे रूढ़ि-मुक्त होकर साहित्य के लिए नवीन विषयों का चयन करे और उन पर मौलिक दृष्टि से विचार करे ।’’ [87]

प्रेमचन्द युग सन् 1916 से 1936 का काल है । इस युग ने भारतीय राजनीति तथा हिंदी उपन्यास साहित्य को एक मोड़ दिया, अतः इस विषय में संक्षिप्त में जान लेना समीचीन होगा ।

प्रथम विश्वयुद्ध सन् 1919 ई. में समाप्त हो चुका था । उसमें भारत ने इंग्लैण्ड को सम्पूर्ण सहयोग दिया था तथापि युद्ध की समाप्ति पर अंग्रेजों ने भारत के हित की तनिक भी परवाह न करके सन् 1919 ई. में 'रोलेट एक्ट' पारित किया जिसमें भारतीयों के रहे-सहे अधिकार भी छीन लिये गये । भारतीय इतिहास में उसे 'काला कानून' के नाम से अभिहित किया गया । देशभर में आँधी उठी । 13 अप्रैल, 1919 के दिन पंजाब के अमृतसर नामक शहर के 'जलियाँवाला बाग' में जनरल डायर ने निहत्थे लोगों पर मशीनगन द्वारा गोलियों की वर्षा की । इस घटना ने अंग्रेजों की नृशंसता एवं बर्बरता को चरमसीमा पर पहुँचा दिया ।

भारतीय राजनीति में गाँधीजी का आविर्भाव इस काल की एक प्रमुख घटना है। अहिंसात्मक सत्याग्रह के द्वारा दक्षिण अफ्रीका में सफलता प्राप्त करके सन् 1915 ई. में वे भारत आ पहुँचे और अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की । सन् 1916 ई. में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की मृत्यु के बाद कांग्रेस की बागडोर उनके हाथों में आ गयी और महात्मा गाँधी 'राष्ट्रपिता' के आसन पर सुशोभित हुए । गाँधीजी के आविर्भाव से उसमें एक अभूतपूर्व परिवर्तन आया । उन्होंने कांग्रेस की काया को ही पलट दिया । पहली बार देश का दिमाग शिक्षित वर्ग और दिल विराट जनता से जुड़ पाया । डॉ. नगेन्द्र जी ने हिंदी साहित्य का इतिहास में लिखा है-

"राजनीतिक दृष्टि से इस युग में महात्मा गांधी का नेतृत्व जनता को सत्य, अहिंसा और असहयोग के माध्यम से स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए निरंतर प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान कर रहा था । 1919 ई. के प्रथम अवज्ञा-आंदोलन की असफलता, जलियांवाला कांड तथा भगतसिंह को प्रदत्त मृत्युदंड जैसी घटनाओं से जनता का मनोबल कम नहीं हुआ था, साइमन कमीशन के बहिष्कार तथा नमक-कानून भंग सदृश जन-आंदोलनों से इसी तथ्य की पुष्टि होती है ।"[88]

उन्होंने कांग्रेस को एक विस्तृत धरातल पर ला खड़ा किया । स्वाधीनता के साथ ग्राम-सुधार, ग्रामोद्योगों का पुनरुद्धार, स्वदेशी का प्रचार, खादी, हिन्दू-मुस्लिम एकता, अछूतों द्वारा स्त्री-शिक्षा राष्ट्रीय-शिक्षा आदि भारतीय जीवन के प्राण-प्रश्नों की प्रतिष्ठा द्वारा समूचे देश में एक नयी चेतना का आविर्भाव हुआ। सत्य और अहिंसा को हथियार बनाया गया । असहयोग और सत्याग्रह के आन्दोलनों ने देश की फ़िजा को ही बदल डाला । संपूर्ण 'प्रेमचन्द युगीन' साहित्य इन्हीं प्रेरणाओं तथा राजनीतिक समस्याओं से ओतप्रोत है ।

प्रेमचन्द युग प्रधानतः राजनीतिक क्षेत्र में उथल-पुथल का युग था । प्रेमचन्द के हिंदी साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करते ही 'जलियाँवाला बाग' की घटना घटी और सत्याग्रह के रूप में विदेशी शक्ति के विरुद्ध एक विशाल आन्दोलन प्रारंभ हुआ । इसका परिणाम यह हुआ कि गतिरोधी शक्तियों को प्रश्रय दिया गया तथा सामंती युग के अवशेष रायबहादुरों नवाबजादों के प्रयत्नों से हिन्दू-

मुस्लिम दंगों के रूप में जातीय विद्‌वेष की भूमि निर्माण की गई । प्रेमचन्द ने इसी पृष्ठभूमि को लेकर उपन्यास 'कायाकल्प' की रचना की । उपन्यासकार ने इस उपन्यास में यह स्थापित किया कि जातीय विद्‌वेष की जड़ें देश की संस्कृति में नहीं, विदेशी कूटनीति में है ।

सन् 1923-24 ई. में उत्तर प्रदेश के किसानों ने प्रथम 'किसान आन्दोलन' चलाया परन्तु राष्ट्रीय कांग्रेस ने उसे विशेष मान्यता नहीं दी । इस आन्दोलन की जड़ें समाज के निचले स्तर तक गाँवों में भी फैल गई । ब्रिटिश सरकार ने किसानों से समझौता किया और जनशक्ति को कुंठित करने में सफल हुई । हमारे नेता सत्य और अहिंसा में बंधे होने के नाते, सरकार की इस चाल को नहीं समझ पाए । प्रेमचन्द में भी इसकी प्रतिक्रिया हुई और परिणाम यह हुआ कि उन्होंने समझौता तथा आदर्श को त्याग दिया और क्रान्ति एवं यथार्थ की भूमि पर वे उतर आए । 'गोदान' उपन्यास की नवीन जागरूक दृष्टि इसी परिवर्तन का संकेत करती है । प्रेमचन्द सन् 1931 में 'गबन' उपन्यास के माध्यम से व्यंग्य स्वर में पहले भी यही जागरूकता दिखला चुके थे लेकिन उपन्यास के पात्र मध्यवर्गीय थे, ग्रामीण नहीं । ग्राम तथा ग्रामीण पात्रों को, अपने उपन्यास में ध्वंसमान दिखाकर उपन्यासकार प्रेमचन्द सुधार की भूमि को त्यागकर विद्रोह की सत्यता पर उतर आए दिखाई देते हैं। उनके दूसरे उपन्यासों के चरित्रों में भी यही प्रतिक्रिया चित्रित हुई है । डॉ. बेचन का मत है कि –

"प्रेमचन्द युग में हिंदी उपन्यास ने पहली बार सामाजिक चरित्रों के विभिन्न पहलुओं से अपना संबंध जोड़ा और चरित्र विश्लेषण में भाषा की अलंकारिता को और कल्पना की रंगीनी के स्थान पर सत्य की नई अपराजित आभा ने प्रवेश किया ।"[89]

प्रेमचन्द का युग वह युग था, जब भारत देश में ब्रिटिश शासन दृढ़ हो चुका था । प्रथम भारतीय स्वतंत्रता युद्ध के पश्चात् सामन्तशाही समाप्त होने जा रही थी तथा एक ओर पूँजीवाद एवं दूसरी ओर नौकरशाही साम्राज्यवाद अपने पंख फैला रहे थे । भारत में अंग्रेज आने के पूर्व भारत के समाज का ढाँचा गाँवों की इकाई पर आधारित था । ग्राम समूचे देश भर में फैले हुए थे और जिनके बीच में कहीं-कहीं शहर मिल जाते थे भारतीय आर्थिक व्यवस्था कृषि पर आधारित थी, इसी कारण गाँवों की संख्या अनगिनत थी । शहर राजनीतिक या धार्मिक अथवा व्यावसायिक के महत्व के कारण थे। भारतीय ग्राम व्यवस्था के साथ सामंती सभ्यता की समाप्ति हुई और पूँजीवाद को 'महाजनी सभ्यता' की संज्ञा दी गई । पूँजीवाद के साथ वर्गचेतना आयी तथा मध्यवर्ग का निर्माण हुआ । प्रेमचन्द के साहित्य में भारतीय ग्राम-व्यवस्था का गौरव, औद्योगिक सभ्यता का परिणाम और पूँजीवादी सभ्यता के कलंक का विस्तृत चित्रण हुआ है । प्रेमचन्द पर तत्कालीन समाज का पूरा प्रभाव पड़ा है । स्वयं उन्होंने स्वीकार किया है कि कोई भी साहित्यकार देश काल से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता । उन्हीं के शब्दों में –

''साहित्यकार बहुधा अपने देश काल से प्रभावित होता है जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार के लिये उससे अविचलित रहना असम्भव हो जाता है । उसकी विशाल आत्मा अपने देश बन्धुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और तीव्र विकलता में वह रो उठता है पर उसके रुदन में भी व्यापकता होती है । वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है ।''[90]

भाषाशैली की चर्चा करें तो प्रेमचन्द-युग भाषा-शैली के विकास का युग है और इस युग में शिल्पविधि का पूर्णरूपेण विकास हुआ है । शिल्प और भाषा की दृष्टि से प्रेमचन्द ने हिंदी उपन्यास को विशिष्ट स्तर प्रदान किया है । प्रेमचन्द की भाषा के विषय में श्रीमती ओम शुक्ल ने लिखा है-

''उनकी भाषा शैली का सबसे अधिक चमत्कार उनके वर्णनों तथा भाषा की चित्रांकन शैली में मिलता है ।''[91]

उनकी शिल्प विशेषता के विषय में डॉ. नगेन्द्र जी ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखा है –

''उनके द्वारा प्रस्तुत किये दृश्य अत्यंत सजीव, गतिमान और नाटकीय हैं । उनके उपन्यासों की भाषा की खूबी यह है कि शब्दों के चुनाव तथा वाक्य-योजना की दृष्टि उसे 'सरल' और 'बोलचाल की भाषा' कहा जा सकता है । पर भाषा की इस सरलता को निर्जीवता, एकरसता और अकाव्यात्मकता का पर्याप्य नहीं समझा जाना चाहिए । प्रेमचन्द के उपन्यासों में, विशेषतः 'गोदान' में भाषा

का वैविध्य जितने स्तरों पर दिखायी पड़ता है, वह हिंदी के उपन्यास-साहित्य में अब तक दुर्लभ है । इतनी 'सरल' भाषा को एक साथ इतने स्तरों पर काम में लाना, प्रेमचन्द जैसे उपन्यासकार द्‌वारा ही संभव था।''[92]

प्रेमचन्द ने सामान्य जनों को अपने उपन्यासों का नायक बनाया और सामान्य लोगों के दैनिक जीवन के विभिन्न समस्याओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है । 'प्रतिज्ञा' में मध्यम गौण समाज की पृष्ठभूमि विधवाओं की समस्या को निरूपित किया है । 'सेवासदन' में सामाजिक समस्याओं को चित्रित किया है । प्रमुख रूप से 'वेश्या समस्या' इस उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद्‌य है । 'वरदान' उपन्यास में ग्रामीण समाज की अभावग्रस्त स्थिति और विडम्बनाओं का चित्रण है । 'प्रेमाश्रम' में ग्रामीण और नागरी जीवन प्रतिबिम्बित है । 'रंगभूमि' में सूरदास के चरित्र के सत्याग्रह आन्दोलन के माध्यम से हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में गांधीवादी दर्शन को प्रश्रय दिया है । 'निर्मला' में दहेज-प्रथा और अनमेल विवाह से होनेवाले पारिवारिक विघटन तथा विनाश का चित्रण है । 'कायाकल्प' में आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में जन्म-मरण के रहस्यों का उद्‌घाटन किया है । 'गबन' में धन के लिए मनुष्य नीति-अनीति और उचित-अनुचित की कोई चिन्ता नहीं करता, यह रमानाथ के चरित्र से व्यक्त हुआ है । 'मंगलसूत्र' में संपन्न परिवार में विविध सदस्यों के भिन्न-भिन्न विचारों के कारण जो क्लेश और कलह होता है इसका विवरण दिया गया है । 'गोदान' भारतीय ग्राम्य जीवन और नागरी जीवन का समग्र रूप में चित्रण करने वाली विशिष्ट और

महत्वपूर्ण कृति है । संक्षेप में प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में समाज के विभिन्न वर्गों का चित्रण किया है ।

प्रेमचन्द के पात्र सामाजिक समस्याओं के प्रतिनिधि हैं। उनका चरित्र-चित्रण परिस्थितियों के अनुकूल हुआ है । प्रेमचन्द ने जमींदारी प्रथा के चित्रण के लिए ज्ञानशंकर, राय साहब, कमलानन्द आदि चरित्रों को रखा है तथा इस कुप्रथा की चक्की में पिसने वाले किसान मनोहर, बलराज, दुःखरन आदि शोषित वर्ग के पात्र भी हैं। समाज के शोषक और शोषित दोनों प्रकार के लोगों का चरित्र-चित्रण प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' में हुआ है । केवल घटनाओं को पढ़कर ही पाठक चरित्रों के सम एवं विषम स्थिति को समझ सकता है । उनके 'गबन' नामक उपन्यास में रमानाथ के चरित्र को आदर्शवाद के साँचे में नहीं ढाला गया है। क्योंकि उसमें मनोबल का अभाव है उसकी कायरता एवं भीरुता का परिचय उस समय मिलता है जब नदी में डूबती हुई अपनी बालिका के रक्षार्थ एक नारी उद्दाम जलप्रवाह में कूद पड़ती है और जोहरा द्वारा नारी को बचाने का आग्रह किये जाने पर वह लजा कर कहता है-

''जाने को मैं तैयार हूँ, लेकिन वहाँ तक पहुँच भी सकूँगा, इसमें सन्देह है । कितना तोड़ है!''[93]

रमानाथ का चरित्र उनके अन्य उपन्यासों के नायकों के स्वरूप से सर्वथा भिन्न है।

प्रेमचन्दजी के समकालीन उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', भगवती प्रसाद वाजपेयी, चतुरसेन शास्त्री, बेचन शर्मा उग्र, जैनेन्द्र, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, सियारामशरण आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचन्दजी के समकालीन उपन्यासकारों में प्रसादजी महत्वपूर्ण हैं। जयशंकर प्रसादजी ने तीन उपन्यास लिखे - 'कंकाल', 'तितली' और 'इरावती' । 'तितली' में ग्रामीण और कृषक जीवन के चित्र उपस्थित किए हैं । इरावती में सामाजिक बंधनों एवं व्यक्ति की सहज प्रवृत्तियों के संघर्ष से उद्घाटित विषमताओं का मार्मिक अंकन किया गया है । विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' जी ने 'भिखारिणी' उपन्यास में सामाजिक विसंगतियों को स्पष्ट किया है । 'संघर्ष' उपन्यास में भी अभिजात वर्ग और आर्थिक विषमता से ग्रस्त लोगों की कथा कही गयी है । भगवती प्रसाद वाजपेयी जी ने 'मीठी-चुटकी', 'अनाथ पत्नी', 'पतिता की साधना' आदि उपन्यास लिखे । 'मीठी-चुटकी' उपन्यास में हिन्दू-विवाह-व्यवस्था का चित्रण किया है । 'अनाथ पत्नी' में भारतीय पत्नी का जीवन कितना कष्टकारी होता है । प्रेम-पथ में वासना और कर्तव्य का द्वंद्व दिखाया है । चतुरसेन शास्त्री ने 'अमर अभिलाषा', 'हृदय की परख', 'हृदय की प्यास' और 'आत्मदाह' शीर्षक उपन्यासों की रचना की, बेचन शर्मा 'उग्र' जी ने 'चन्द हसीनों के खतूत', 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी' आदि उपन्यासों में

समाज की बुराइयों को, उसकी नंगी सचाई को, बिना किसी लाग-लपेट के बड़े ही साहस के साथ, किंतु सपाटबयानी रूप में प्रस्तुत किया । जैनेन्द्र जी ने 'परख', 'सुनीता' और 'त्यागपत्र' उपन्यास लिखे । 'परख' में समकालीन सामाजिक उपन्यासों की परंपरा से (जिसके प्रेमचंद सर्वश्रेष्ठ लेखक थे) अलग लीक पर चलने का प्रयास किया । लेखक ने व्यापक सामाजिक जीवन को अपने उपन्यासों का विषय न बनाकर व्यक्ति-मानस की शंकाओं, उलझनों और गुत्थियों का चित्रण किया है । वृन्दावनलाल वर्मा जी ने दो सामाजिक उपन्यास लिखे 'संगम' और 'लगन' तथा दो ऐतिहासिक उपन्यास 'गढ़कुण्डार' और 'विराटा की पद्‌मिनी' । भगवतीचरण वर्मा ने 'चित्रलेखा', 'तीन वर्ष', 'अश्रुपंकिल' उपन्यासों की रचना की । सियारामशरण गुप्तजी ने 'गोद', 'अंतिम आकांक्षा' आदि उपन्यास लिखे ।

इस काल में सामाजिक उपन्यास के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक उपन्यास, ऐतिहासिक, हास्यप्रधान उपन्यास की रचना भी हुई । इस काल में ज्यादातर सामाजिक उपन्यास लिखे गये । मनोवैज्ञानिक उपन्यास की शुरुआत जैनेन्द्र जी ने की । ऐतिहासिक उपन्यास इस काल में कम दिखाई दिये । ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में वृन्दावनलाल वर्मा उल्लेखनीय हैं। जिन्होंने भारतीय इतिहास की मध्ययुग के प्रारंभ में बुन्देलखंड की स्थिति को लेकर 'गढ़कुंडार' और विराटा की पद्‌मिनी नामक दो बड़े सुंदर उपन्यास लिखे । इसके अतिरिक्त

राहुल सांकृत्यायन ने मौलिक उपन्यासों के स्थान पर 'शैतान की आँख', 'विस्मृति के गर्भ में', 'सोने की ढाल' अनूदित उपन्यासों की रचना की, जिनमें ऐतिहासिक-रोमानी कथानकों का स्थान प्राप्त हुआ है । हास्य प्रधान उपन्यासों की परंपरा भी प्रेमचन्द काल में मुख्य रही । जी.पी. श्रीवास्तव 'बेढब बनारसी' उपन्यासकारों ने इस विधा को नया रंग दिया है ।

संक्षेप में "प्रेमचन्द उपन्यास साहित्य का एक महत्वपूर्ण एवं क्रान्तिकारी युग है । उपन्यास जगत को इस युग का जितना प्रदाय प्राप्त हुआ है उतना अन्य युगों में नहीं । उपन्यास के स्वरूप को स्थायित्व प्रदान करना, कल्पना एवं रोमांस से यथार्थ बनाना, भारतीय संस्कृति के साथ तादात्म्य स्थापित करना तथा जन जीवन के साथ चलना आदि प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों का कार्य है । प्रेमचन्द युग न केवल युग विशेष की महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है, बल्कि सम्पूर्ण उपन्यास जगत् का प्रतिनिधित्व करता है । इस युग में सामाजिक उपन्यास अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच गया, ऐतिहासिक उपन्यासों का सर्वांगीण विकास हुआ तथा मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का उदय हुआ । यहीं से पूर्ववर्ती वाले उपन्यासों का क्रमशः ह्रास होने लगा ।"[94]

प्रेमचन्द युग के प्रमुख उपन्यासकारों का संक्षिप्त में परिचय निम्नलिखित है ।

- **प्रमुख उपन्यासकार**

1 प्रेमचन्द

मुंशी प्रेमचन्द हिंदी के सर्वोत्कृष्ट उपन्यासकार माने जाते हैं । उनका जन्म शनिवार तारीख 31 जुलाई, 1880 ई. को बनारस से चार मील दूर लमही नामक गाँव में हुआ था । उनका वास्तविक नाम धनपतराय था । प्रेमचन्द के आगमन से ही हिंदी उपन्यास में नया युग प्रारंभ होता है । 'सेवासदन' (1918) के प्रकाशन के साथ ही प्रेमचन्द ने हिंदी में एक युग-प्रवर्तक उपन्यासकार के रूप में कदम रखा था । इस बात को स्वीकार करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है—

''सेवासदन' उनकी पहली प्रौढ़ कृति है जहाँ से उनके नये औपन्यासिक जीवन का ही नहीं बल्कि हिंदी उपन्यास के एक नये युग का भी प्रादुर्भाव हुआ।'' [95]

प्रेमचन्द से सन् 1918 ई. के पूर्व उर्दू में अनेक उपन्यासों का सृजन किया था । जिनमें 'प्रेमा' या 'दो सखियों का विवाह' (हमसुर्खा व हमसबाब का रुपांतर) सन् 1907 ई. में हिंदी में प्रकाशित हो चुका था । इनके अन्य आरम्भिक उपन्यास 'असरारे महाविद' उर्फ 'देवस्थान रहस्य', 'किसान', 'रूठी रानी' आदि प्रसिद्ध हैं। सन् 1818 ई. में प्रेमचन्द ने अपने 'सेवासदन' उपन्यास को लेकर हिंदी उपन्यास क्षेत्र में प्रवेश किया । 'सेवासदन' उपन्यास पहले उर्दू में 'बाजारे हुस्न' के नाम से लिखा गया था । 'सेवासदन' के समान ही प्रेमचन्द ने

अपने उर्दू में लिखे गए उपन्यासों के हिंदी में रूपान्तर प्रकाशित करवाए । हिंदी में प्रकाशित उपन्यासों में 'वरदान' (सन् 1902), 'सेवासदन' (सन् 1918), 'प्रेमाश्रम' (1922), 'रंगभूमि' (1925), 'कायाकल्प' (1926), 'निर्मला' (1927), 'प्रविज्ञा' (1927), 'गबन' (1931), 'कर्मभूमि' (1933) और 'गोदान' (1936) महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में तमाम सामाजिक विषमताओं तथा समस्याओं, शोषण, गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास, दहेज, अनमेल विवाह, अंतर्जातीय विवाह, विधवा समस्या, नारी की दयनीय स्थिति, वेश्यावृत्ति, सांप्रदायिकता, अस्पृश्यता आदि का चित्रण है तथा उनके समाधान का प्रयत्न है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार-

''प्रेमचन्द शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित किसान की आवाज तथा लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील हैं।''[96]

2 जयशंकर प्रसाद (1890-1937)

इनका जन्म काशी के सुंघनी साहू परिवार में हुआ था । संस्कृत, हिंदी, फारसी, उर्दू आदि भाषाएँ इन्होंने घर पर ही रहकर पढ़ीं । दुर्भाग्यवश बारह वर्ष की अवस्था में ही पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण इनके ऊपर परिवार

और व्यवसाय का सारा बोझ आ गया । साहित्य रचना के क्षेत्र में प्रसादजी ने बचपन से ही अपनी प्रतिभा का परिचय देना प्रारंभ कर दिया था । अनेक पत्र पत्रिकाओं में लेखन के अतिरिक्त उन्होंने 'इंदु' पत्रिका का सम्पादन भी किया । काव्य, नाटक तथा कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रसादजी की देन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रसाद द्वारा लिखित औपन्यासिक कृतियों में 'कंकाल' (1929) 'तितली' (1934) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'तितली' में ग्रामीण और कृषक जीवन का सामान्य औपन्यासिक फैलाव-मात्र है । 'कंकाल' की विशिष्टता यह है कि इसमें प्रसादजी ने समाज की त्याज्य, अवैध और अज्ञात कुलशील सन्तानों की कथा कही है ।

3 विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' (1891-1946)

इनका जन्म अम्बाला में हुआ था । बाद में उनके परिवार वाले कानपुर आकर बस गये । यहीं पर उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण कर मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की । प्रारंभ में उर्दू के प्रति अधिक रुचि रखने के पश्चात् सन् 1911 से वह नियमित रूप से हिंदी साहित्य के क्षेत्र में सृजनात्मक रचना करने लगे। उनकी प्रकाशित रचनाओं में 'भीष्म' (1918), 'गल्पमंदिर' (1919), 'चित्रशाला' (1924) (दो भाग), 'मणिमाला' (1929), माँ (1929), 'भिखारिणी' (1929) आदि उल्लेखनीय हैं। कौशिकजी के उपन्यासों में मुख्यः नाटकीय तत्वों से युक्त

कथावस्तु की प्रधानता है और परंपरागत रूप से आदर्शवाद के प्रति आग्रह भी उनमें मिलता है ।

4 पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

हिंदी उपन्यास के इतिहास में श्री पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का नाम कथात्मक शैली के तीव्र रूप के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से उल्लेखनीय है । उनके उपन्यासों में भारतीय समाज के भीतर गुप्त रूप से व्याप्त घृणित वृत्तियों, मदिरालयों तथा वेश्यालयों आदि से संबंधित यथार्थपरक चित्रण की प्रधानता है । उन्होंने समाज की कुत्सित वृत्तियों और उनकी मार्मिक और विडंबनात्मक परिणति का चित्रण सामाजिक जीवन के उत्थान के उद्‌देश्य से प्रस्तुत किया है । उनका सर्वप्रथम उपन्यास 'घंटा' सन् 1916 में प्रकाशित हुआ था । इसके अतिरिक्त और भी उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, जिनमें 'दिल्ली का दलाल' (1927), 'चन्द हसीनों के खतूत' (1923), 'बुधुआ की बेटी' (1929) आदि उल्लेखनीय हैं।

5 ऋषभचरण जैन

प्रेमचन्द कालीन उपन्यासकारों में यथार्थवादी कथा प्रवृत्ति के अंतर्गत श्री ऋषभचरण जैन का नाम उल्लेखनीय है । 'उग्रजी' की भाँति उन्होंने भी मुख्य रूप से सामाजिक विकृतियों और अभिशापों का चित्रण अपने विविध उपन्यासों में किया है । इन्होंने अनेक उपन्यासों की रचना की है जिनमें 'मास्टर साहिब'

(1927), 'दिल्ली का व्यभिचार' (1928), 'दिल्ली का कलंक' (1928), 'गदर' (1930), 'चाँदनी रात' (1931), 'मधुकारी' (1933), 'तपोभूमि' (1936) आदि हैं। लेखक ने इन उपन्यासों में यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि आधुनिक युग में नैतिकता का स्वरूप परिवर्तित हो गया है। सामाजिक विभीषिकाएँ और अभिशाप से ग्रस्त मनुष्य अनेक प्रकार के कुकृत्यों को इच्छित अथवा अनिच्छित रूप से करता है लेखक का मत है कि यह कुप्रवृत्तियाँ उसे अन्दर ही अन्दर घुन की तरह खोखला करती चली आ रही हैं और इनसे मुक्ति पाकर ही समाज का विकास सम्भव हो सकता है ।

6 इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों में श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति का नाम भी उल्लेखनीय है । उनके द्वारा रचित उपन्यासों में 'शाह आलम की आँखें' (1932), 'अपराधी कौन' (1932), 'जमींदार' (1936) आदि मुख्य रूप से उल्लेखनीय है । इतिहास, धर्मशास्त्र, संस्कृति तथा राजनीति आदि के क्षेत्र में उनकी महत्वपूर्ण देन है ।

7 भगवतीचरण वर्मा

श्री भगवतीचरण वर्मा का व्यक्तिवाद अहंवाद की सीमा तक पहुँचा हुआ है । एलेक्जेण्डर ड्यूना, अनातोले फ्रान्स और शरदचन्द्र का अध्ययन उन्होंने भी किया है । नव-जागरण के केन्द्र–सी प्रयाग यूनिवर्सिटी में उनकी शिक्षा हुई,

परन्तु स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के कारण वे कभी भी स्वाध्याय प्रिय नहीं बन सके । अहंवादी होने के कारण प्रायः वे अपने ही चिन्तन-मनन पर दारोमदार बाँधते हुए प्रतीत होते हैं । आलोच्य काल में उनके दो उपन्यास मिलते हैं - 'पतन' (1928) और 'चित्रलेखा' (1934) 'पतन' की अपेक्षा 'चित्रलेखा' अधिक परिपक्व कृति है ।

8 जैनेन्द्र कुमार

हिंदी उपन्यास को प्रेमचन्द युग में ही नयी दिशा देने का सफल प्रयास किया जैनेन्द्र जी ने । आलोच्य काल में उनके तीन उपन्यास प्रकाशित हुए - 'परख' (1926), 'सुनीता' (1935) और 'त्यागपत्र' (1937) । हिंदी उपन्यास को उनसे जो पाना था, वह इन्हीं कृतियों में मिल गया । 'परख' में समकालीन 'सामाजिक' उपन्यासों की परंपरा से (जिसके प्रेमचन्द सर्वश्रेष्ठ लेखक थे) अलग लीक पर चलने का प्रयास किया गया है । लेखक ने व्यापक सामाजिक जीवन को अपने उपन्यासों का विषय न बनाकर व्यक्ति-मानस की शंकाओं, उलझनों और गुत्थियों का चित्रण किया है ।

9 वृन्दावनलाल वर्मा

वृन्दावनलाल वर्मा का कृतित्व भी प्रेमचन्द युग से शुरू हो जाता है । डॉ. भारतभूषण अग्रवाल के मतानुसार - ''जिस प्रकार प्रेमचन्द ने पहली बार

उपन्यास को गंभीर स्तर पर पहुँचाया था, उसी प्रकार वृन्दावनलाल वर्मा ने पहली बार ऐतिहासिक उपन्यास को गरिमा प्रदान की ।'' [97]

आलोच्य काल में उन्होंने 'गढकुण्डार' (1927 ई.) एवं 'विराटा की पद्मिनी' (1930 ई.) नामक ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की और 'लगन' (1927), 'संगम' (1927 ई.), 'कुण्डलीचक्र' (1928 ई.), 'प्रेम की भेंट' (1928), 'प्रत्यागत' (1928 ई.) आदि सामाजिक उपन्यासों की भी रचना की । वर्मा जी ने विधिवत शिक्षा ग्रहण की थी । बी.ए.एल.एल.बी. करके वे वकालत करने लगे थे । भारतीय इतिहास के प्रति उनका अनुराग विद्यार्थी काल से ही था । वाल्टर स्कॉट के उपन्यासों का भी उन्होंने अध्ययन किया था । भारत के इतिहास में वे कुछ संशोधन भी करना चाहते थे । उन्होंने स्वयं लिखा है - ''पहले इतिहास लिखने का विचार था परन्तु किस्से-कहानियां, वीर-गाथाएँ सुनने का छुटपन से व्यसन था और फिर मिल गए वाल्टर स्काट पढ़ने को तो मैंने अपनी बात कहने का माध्यम उपन्यास चुना ।''[98]

वर्मा जी के उपन्यासों में इतिहास के विविध युगों की घटनाओं की आधारभूमि पर सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का प्रभावशाली चित्रण हुआ है । उनके ऐतिहासिक उपन्यासों के कथा नियोजन और घटना चक्र में स्त्री पात्रों की महत्वपूर्ण भूमिका पाई जाती है जिनके चित्रण में लेखक ने विशेष सतर्कता का परिचय दिया है ।

10 भगवतीप्रसाद वाजपेयी

आधुनिक युग के सामाजिक उपन्यासकारों में भगवतीचरण वाजपेयी का महत्वपूर्ण स्थान है । उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज के विविध पक्षों का चित्रण करते हुए विभिन्न समस्याओं पर विस्तार से अपने विचार प्रस्तुत किये है । उनके द्वारा लिखित उपन्यासों में 'प्रेमपथ' (1926), 'मीठी चुटकी' (1927), 'त्यागमयी' (1929), 'लालिमा' (1934), 'पतिता की साधना' (1936), आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त उनके 'हिलोर', 'सूनी राह' तथा 'विश्वास का बल' शीर्षक तीन उपन्यास भी प्रकाशित हैं। भगवती बाबू ने अपने उपन्यासों में समाज के सभी प्रमुख वर्गों की समस्याओं का चित्रण किया है । आधुनिक जीवन की विविध सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं को उनके उपन्यासों में उठाया गया है । समाजोन्नयन के उद्देश्य से आदर्श और यथार्थ का विविध रूपात्मक चित्रण उनके उपन्यासों में प्रस्तुत किया गया है ।

11 सियारामशरण गुप्त

सियारामशरण गुप्त भी गांधीवादी आदर्शवादी कलाकार हैं। प्रेमचन्दजी की भाँति उन्होंने भी मध्यवर्ग और निम्नवर्ग को अपनाया है । 'गोद' (1933) और 'अन्तिम आकांक्षा' (1934) उनके आलोच्य काल के दो सामाजिक उपन्यास हैं।

उन्होंने अपने उपन्यासों में परंपरावादी रूढ़ियों की विडंबना का मार्मिक चित्रण किया है । उनके उपन्यासों में आदर्शवादी भावना की प्रधानता है ।

12 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

निराला जी का जन्म बंगाल में हुआ था । बंगाल में रहने के कारण उन्हें बंगला भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त हुआ था । आधुनिक हिंदी साहित्य में उनका स्थान एक उपन्यासकार की अपेक्षा एक कवि के रूप में अधिक महत्वपूर्ण है । 'समन्वय', 'मतवाला' तथा 'सुधा' नामक पत्र-पत्रिकाओं से संबंधित रहकर उन्होंने साहित्य की विविध रूपात्मक सेवा की ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा रचित औपन्यासिक कृतियों में 'अप्सरा', 'अलका', 'निरूपमा', 'प्रभावती', 'चोटी की पकड़', 'काले कारनामे' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासों में निरालाजी ने व्यंग्यात्मक रूप में विविध सामाजिक पक्षों का चित्रण किया है और उनका दृष्टिकोण प्रमुख रूप से कुरीति निवारण रहा है ।

13 गोविन्दवल्लभ पंत

गोविन्दवल्लभ पंत मूलतः नाटककार हैं किन्तु आलोच्य काल में उनके 'प्रतिमा' (1934) और 'मदारी' (1936) नामक उपन्यास मिलते हैं। 'मदारी' में पहाड़ी जीवन का चित्रण है तथा पर्वतराज हिमालय की प्राकृतिक शोभा-सुषमा का बड़ा ही मनोहारी चित्र इसमें उपलब्ध होता है ।

14 प्रतापनारायण श्रीवास्तव

प्रेमचन्दजी के समकालीन उपन्यासकारों में प्रतापनारायण श्रीवास्तव का नाम उल्लेखनीय है । आलोच्य काल में उनका एक उपन्यास मिलता है 'विदा' (1927) । 'विदा' में शिक्षित मध्यवर्ग के जीवन का अंकन है तथा विदेशी अनुकरण के विरुद्ध भारतीय मर्यादाओं की प्रतिष्ठा की गई है ।

उपरोक्त उपन्यासकारों के अतिरिक्त इस काल के अन्य उपन्यास लेखकों और उनके उपन्यासों में पं. रूपनारायण पाण्डेय कृत 'तारा', जगमोहन शर्मा कृत 'लोक वृत्ति', जयगोपाल का 'उर्वशी', अवध उपाध्याय का 'कर्तव्यपुरी की रानी', विनोद शंकर व्यास का 'अशांत', लक्ष्मी नारायण 'सुधांशु' का 'भ्रातृप्रेम', शिवपूजन सहाय का 'देहाती दुनिया', के.एम. भारद्वाज का 'विद्रोही राज', प्रसिद्ध नारायण सिंह का 'संसार रहस्य' आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव का 'अबलाओं का बल' श्रीनाथ सिंह का 'उलझन', 'प्रभावती', 'प्रजामण्डल' और 'जागरण' आदि उल्लेखनीय हैं।

2.3.2.4 प्रेमचन्दोत्तरकालीन उपन्यासों की पृष्ठभूमि

सन् 1936 में मुंशी प्रेमचन्द जी का देहांत हुआ । उनके देहांत के साथ ही प्रेमचन्द-युग का समापन समझा जाता है । प्रेमचन्द युग के उपरांत भारत की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था एवं विचारों में अनेक परिवर्तन हुए

। उनके समय में ही धर्म, नैतिकता और प्राचीन मूल्यों पर आघात होने लगे थे । परन्तु बाद में बढ़ते हुए संघर्ष, व्यक्तिगत स्वार्थ तथा आर्थिक दृष्टिकोण ने लोगों के हृदय से इन सबके प्रति अनास्था के भाव निर्माण किये गये । इसी बीच विश्वव्यापी द्वितीय महायुद्ध, बंगाल का अकाल, देश विभाजन, साम्प्रदायिकता आदि दुःखद घटनाओं ने राष्ट्रीय जीवन के अस्थिपंजर ढीले कर दिये । चारों तरफ अनास्था, कुंठा, बिखराव, स्वार्थ, अविश्वास का वातावरण फैल गया । इन सभी प्रवृत्तियों की स्पष्ट झलक प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यासों में दिखाई देती है ।

प्रेमचन्दोत्तर युग में, भारत के इतिहास में विविध परिवर्तन तीव्र गति से होने लगे । सन् 1939 ई. में द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ हुआ जो 1946 ई. तक चला । सन् 1940 ई. से कांग्रेस का सविनय अवज्ञा का युद्ध पुनः आरंभ हो जाता है । सन् 1942 ई. में 'भारत छोड़ो' का राष्ट्रव्यापी आन्दोलन भी छिड़ जाता है । फलतः 9 अगस्त, 1942 ई. में महात्मा गांधी तथा अन्य प्रमुख कांग्रेसी नेता को गिरफ्तार कर लिया जाता है । इस पर पूरे देश में प्रदर्शन हुए तथा लोगों ने व्यापक खुलकर भाग लिया । फलतः 16 मई 1944 ई. को अंग्रेजों ने गाँधीजी को छोड़ दिया । सन् 1945 ई. में राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम में समझौता हुआ । अंग्रेजों ने तोड़-फोड़ की नीति अपनाई । 16 अगस्त, 1946 ई. को 'मुस्लिम लीग' ने 'एक्सन डे' मनाया और तब से कलकत्ते में साम्प्रदायिक

दंगों की शुरूआत हुई और सारे भारत में फैल गई । सन् 1947 के आरंभ में अंग्रेजों ने वायसराय लार्ड वेवेल को इंग्लैण्ड वापिस बुलाकर उनके स्थान पर लार्ड माउंट बेटेन को भेज दिया । लार्ड माउंट बेटेन ने समझौते के प्रयत्न किये और तुरन्त ही स्वराज्य दिये जाने की घोषणा की । फलतः 15 अगस्त 1947 को आजादी मिली देश बांट दिया गया, इससे न देश बँटा बल्कि संस्कृति, सभ्यता तथा आर्थिक स्थिति भी बदल गयी । उसके उपरांत भी देश में छोटी-बड़ी घटनाएँ होती रहीं, जिसने समूचे युग मानव को झकझोर दिया । भारत में गरीबी, बेरोजगारी एवं बर्बरता बढ़ने लगी, जो आज भी दिखाई देती है । इन सारी घटनाओं तथा परिस्थितियों से लेखक भी अछूता नहीं रह सकता था, क्योंकि वह अंततः एक सामाजिक प्राणी है जिस पर परिस्थिति की प्रतिक्रिया होती है । उपर्युक्त परिस्थितियों का परिणाम यह हुआ कि 'मनास्था तथा निराशा की झूठी उपलब्धियों से, मानव के जीवन के प्रति जो विश्वास और गहरी सुनहरी आशा थी, उसे आघात सा लगा । देश के स्वतंत्रता के साथ ही साथ लोगों के जीवन में अनेक नई समस्याएँ उत्पन्न हुईं। मानव जीवन की समस्याएँ दिनोदिन भयंकर होने लगीं। इस नवोदित आजादी की किरणें सामान्य जनता के जीवन को आलोकित नहीं कर सकीं। कुछ परिवर्तन तो अवश्य हुआ किन्तु सिर्फ इतना ही उससे आभास हुआ कि और कितने परिवर्तन की आवश्यकता है ।'

प्रेमचन्दोत्तर युग में, हिंदी साहित्य में अनेक नवीन प्रवृत्तियों का उदय हुआ, जो कि बदलते हुए काल की ही देन थी । यह युग भारतीय समाज तथा जनजीवन के संक्रमण का युग है । भारतीय समाज, अपनी प्राचीनता से मुक्त न हो सका और न पाश्चात्य संस्कृति, सभ्यता, औद्योगिक विकास एवं अन्य परिवर्तनों को पूर्ण रूप से स्वीकार कर सका । परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनमानस का एक मिश्रित व्यक्तित्व तैयार हुआ, जिसके संस्कार तो प्राचीन थे परन्तु अत्याचार-व्यवहार इत्यादि आरोपित । इस युग की और भी एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि पुरातन नारी संबंधी मान्यताएँ क्रमशः शिथिल पड़ती जा रही थीं। जब तक सम्पूर्ण आर्थिक प्रणाली में मूलतः परिवर्तन नहीं होता तब तक नारी-मुक्ति का महान स्वप्न अधूरा ही रहता, इस कारण आर्थिक प्रणाली में परिवर्तन आवश्यक था । भारतीय समाज में वर्णव्यवस्था और संयुक्त परिवार का महत्व हमेशा ही रहा है । अब धीरे-धीरे स्पष्ट होता जा रहा था कि समाज का सामंतवादी ढाँचा आहिस्ते-आहिस्ते टूटने लगा था एवं उसकी जगह पर जो भी पूँजीवादी समाज का उदय हो रहा था, उसे वर्णव्यवस्था और संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था से कोई विशेष लगाव नहीं था । लेकिन वर्णव्यवस्था के प्रति अलगाव होते हुए भी जातिगत भावना कम नहीं हुई थी । जातिगत भावना के आधार पर निर्मित तत्कालीन कई संगठन तथा समस्याएँ इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। फिर भी यह बात निश्चित हो गई थी कि पुरातन

काल से चली आ रही व्यवस्था के सामाजिक संगठन अपने रूपों को स्थिर रख आने की स्थिति में नहीं थे, क्योंकि सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार का स्थान नवीन सामाजिक आर्थिक वर्गों ने ले लिया था, जो पूँजीवाद की देन थी। अब व्यक्ति के सामने दो स्थितियाँ थीं, एक पुरानी जर्जर रूढ़ियों एवं मान्यताओं का विरोध और दूसरी नवीन सामाजिक स्थिति में अपने आपको समझौता करने का प्रयत्न । डॉ. गोपालजी पाण्डेय ने लिखा है कि –

"ऐसे बदलते युग में उपन्यास-साहित्य का दायित्व बढ़ गया । कथा के माध्यम से साहित्यकार ने देश में उभरी हुई समस्याओं के निदान ढूँढ़ कर प्रस्तुत किये । ऊब और उमस से भरे हुए देश के वातावरण में कल्पना और आशा ही सुगन्ध बिखेर कर जीने की इच्छा उत्पन्न की ।" [99]

सन् 1936 ई. से आजतक का काल हिंदी उपन्यास में सर्वोपरि विकास का काल है । इस काल में हिंदी उपन्यास का विकास अनेक मोड़ों से गुजरता हुआ दिखाई देता है। प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यास के विकास क्रम के बारे में डॉ. नगेन्द्र का मत है कि "प्रेमचन्द के उपरान्त हिंदी उपन्यास कई मोड़ों से गुजरता हुआ दिखाई पड़ता है, जिन्हें स्थूल रूप से तीन दशकों में बाँटा जा सकता है - 1950 ई. तक के उपन्यास, 1950 से 1960 तक के उपन्यास और साठोत्तरी उपन्यास । पहला दशक मुख्यतः फ्रायड और मार्क्स की विचारधारा से

प्रभावित है, दूसरा प्रयोगात्मक विशेषताओं से और तीसरा आधुनिक विचारधारा से ।'' [100]

प्रेमचन्द तक आते-आते उपन्यास शुद्ध यथार्थवादी धरातल पर स्थापित हो चुका था । प्रेमचन्दोत्तर युग में इसी यथार्थ के विभिन्न रूप-आयाम उपलब्ध होते हैं। मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तथा फ्रायड प्रवृत्ति मनोवैज्ञानिकों के मनोविश्लेषणवाद ने समाज एवं व्यक्ति के यथार्थ को और भी स्पष्ट कर दिया । मार्क्स और फ्रायड के विचारों ने उपन्यास क्षेत्र में नई जागृति ला दी । फ्रायड के सिद्धान्तों ने व्यक्ति के मानस तथा चेतना का जो रूप प्रकट किया था, उससे उपन्यासकार को विदित हुआ कि बाह्य संघर्ष प्रतिछाया अथवा उसका विशाल रूप होता है । बाहरी घटनाओं के घटित होने से पूर्व ही मानव मन में ही कई घटनाएँ घटित हो जाती हैं। बाहर के स्थूल संघर्ष से जूझना होता है । फलतः उपन्यासकार की दृष्टि से व्यक्ति और परिस्थिति के संघर्ष का कोई मूल्य न रहा 'घटना तथा संघर्ष' की परिभाषा बदल गई और उनके चित्रण का स्वरूप बदल गया उपन्यास में बाह्य संघर्ष की जगह अंतरसंघर्ष ने ले लिया तथा उपन्यासकार अनुभूति के विविध स्तरों पर व्यक्ति मानस में हो रहे संघर्ष के अचेतन कारणों के अनुसंधान में मनोविश्लेषण की ओर प्रवृत्त हुआ । इससे इस युग के रचनाकार बहुत ही आत्मविश्वास के साथ अपने पात्रों के मानस की चीरफाड़ करने तथा उनके अचेतन का एक-एक आवरण खोलने में जुट गये ।

कोरे भावुकता पूर्ण अंदाज की जगह मनोवैज्ञानिक प्रकारों ने ले लिया । प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यास विकास के बारे में डॉ. बेचन का विचार है-

''प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का नवीनतम विकास, इसके मनोवैज्ञानिक के समावेश के कारण हुआ, जिससे उपन्यासों के कला सौन्दर्य में अभूतपूर्व वृद्धि हुई ।'' [101]

मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों का सूत्रपात जैनेन्द्र जी ने किया । ''पहले दशक में फ्रायड से प्रभावित हो कर जिस कथा-साहित्य की रचना की गयी, उसकी पृष्ठभूमि जैनेन्द्र पहले ही प्रस्तुत कर चुके थे । जहाँ प्रेमचन्द ने समाज के साथ व्यक्ति के एकीकृत (एडजस्ट) होने के प्रश्न को अधिक महत्व दिया, वहीं जैनेन्द्र ने व्यक्ति की गुम होती हुई पहचान को उभार कर सामने रखा । उनके उपन्यासों में अनमेल विवाह या दहेजप्रथा जैसी समस्याएँ नहीं हैं, बल्कि विवाह स्वयं में एक समस्या है, क्योंकि सारी अनिश्चितताएँ उसके बाद आरंभ होती हैं।'' [102]

इस विषय में रामदरश मिश्र का मत है - ''जैनेन्द्र का सर्वाधिक महत्व इस बात में स्वीकारा जाना चाहिए कि उन्होंने कथा-साहित्य को एक नई दिशा दी अर्थात् उन्होंने उपन्यास और कहानी को प्रेमचन्द के प्रभावों से मुक्त किया।'' [103]

किन्तु जिस मुक्ति की समस्या पर उन्होंने बल दिया, उसके आड़े आते हैं रूढ़ संस्कार और इस प्रकार जैनेन्द्र जी का प्रत्येक उपन्यास अंतर्विरोधों का उपन्यास बन गया है । आलोच्य युग में प्रकाशित उनके उपन्यासों - 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विवर्त', 'व्यतीत', 'जयवर्धन' आदि में यह प्रवृत्ति मनोविज्ञान, दार्शनिकता, वैयक्तिकता आदि के माध्यम से विविध रूपों में उभरी है । उनके नारीपात्र यदि एक ओर समाज की मर्यादाओं को बनाये रखना चाहते हैं, वहीं दूसरी ओर अपने अस्तित्व की पहचान भी करना चाहते हैं । ऐसी स्थिति में आत्मयातना के अतिरिक्त और कोई राह शेष नहीं रहती । उनके पात्र समाज को न तोड़ कर स्वयं टूटते हैं, किन्तु अपने को तोड़ कर किसी को निर्मित नहीं करते । नियति, ईश्वर, धर्म आदि में अटूट आस्था उनके उपन्यासों को आधुनिक नहीं बनने देती, वे रोमेंटिक 'ऐगोनी' का रूप लेते हैं । उनके अतिरिक्त अज्ञेय ने 'शेखर एक जीवनी' (1941-1944), 'नदी के द्वीप' (1951), 'अपने-अपने अजनबी' (1961) उपन्यास लिखे । जैनेन्द्र और अज्ञेय फ्रायड के मनोविज्ञान से प्रभावित हैं तो इलाचन्द्र जोशी उसके मनोविश्लेषण से। 'घृणामयी' (1929), उनका पहला उपन्यास है । इसके बाद उन्होंने 'संन्यासी', 'पर्दे की रानी' और 'प्रेत और छाया' उपन्यास लिखे । इन तीन उपन्यासों में एबनॉर्मल चरित्रों को लिया गया है । इनके मुख्य पात्र किसी न किसी मनोवैज्ञानिक ग्रंथि के शिकार हैं । जब तक उन्हें ग्रंथि का रहस्य नहीं मालूम होता तब तक वे अनेक प्रकार के असामाजिक

कार्यों में संलग्न रहते हैं, किन्तु जिस क्षण उनकी ग्रंथियों का मूलोद्घाटन हो जाता है, उसी क्षण वे सामान्य स्थिति में पहुँच जाते हैं । इसके अतिरिक्त उन्होंने 'निर्वासित' (1946), 'मुक्ति पथ' (1950), 'जिप्सी' (1955) उपन्यास लिखे । इन उपन्यासकारों के अतिरिक्त देवराज, नरेश महेता, धर्मवीर भारती आदि लेखकों ने इसी परंपरा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

प्रेमचन्दोत्तर काल में सामाजिक, ऐतिहासिक उपन्यासों की पूर्व परंपरा का विकास आगे भी होता रहा । '' 'गोदान' में प्रेमचन्द ने आदर्शवाद से बहुत कुछ मुक्त हो कर जिस यथार्थवादी दृष्टिकोण को ग्रहण किया था, उसकी परंपरा को आगे बढ़ाने का श्रेय यशपाल को है ।'' [104]

उनके 'अमिता' और 'दिव्या' नामक ऐतिहासिक उपन्यासों को छोड़कर शेष सभी उपन्यास समाजवादी यथार्थ का चित्रण प्रस्तुत करते हैं । यह है - 'दादा कामरेड' (1941), 'देशद्रोही' (1943), 'पार्टी कामरेड' (1946), 'मनुष्य के रूप' (1944), 'झूठा-सच' (दो भाग, 1958, 1960) 'मेरी तेरी उसकी बात' (1973)। यशपाल के अतिरिक्त सामाजिक उपन्यासकारों में भगवती चरण वर्मा ने 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दांव', 'भूले-बिसरे चित्र' आदि, उपेन्द्रनाथ अश्क जी ने 'शहर में घूमता आईना', 'एक नन्हीं कंदील', 'गर्म राख' (1952), 'बड़ी-बड़ी आँखें' (1954), 'पत्थर-अल-पत्थर' (1957) आदि, अमृतलाल नागर जी ने - 'अमृत और

विष' (1966), 'सेठ बांकेलाल' (1955), 'महाकाल' (1947), 'बूँद और समुद्र' (1956) आदि उपन्यास लिखे ।

इस काल में ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना वृन्दावनलाल वर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल और रांगेय राघव द्वारा हुई । इन ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृन्दावनलाल वर्मा एवं रांगेय राघव का नाम विशेष उल्लेखनीय है ।

वर्मा जी ने सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं, पर उनकी ख्याति विशेषतः 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'भुवनविक्रम' आदि ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए है । इनमें 'झाँसी की रानी', 'मृगनयनी' मुख्य है। वर्माजी के उपन्यासों की ऐतिहासिक सामग्री प्रायः मुस्लिम काल की है जिसे उन्होंने स्वयं के अध्ययन, जनश्रुतियों और परंपराओं द्वारा ग्रहण किया है । उनकी लेखनी के संबंध में रामदरश मिश्रजी ने लिखा है –

''इन्होंने इतिहास की उन्हीं सामग्रियों को ग्रहण किया है, जिनके चयन से उपन्यास की मनोरंजकता बनी ही रही, साथ-साथ जीवन के विविध पक्षों का पारस्परिक संघर्ष और उदात्त वृत्तियों की विजय भी अंकित होती चली गई।''[105]

वर्माजी के अतिरिक्त आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारू चंद्रलेख', 'पुनर्नवा' आदि राहुल सांकृत्यायन ने 'सिंह सेनापति'

और 'जय यौद्धेय', यशपाल जी ने 'दिव्या', 'अमिता' और रांगेय राघव जी ने 'मुर्दों का टीला' 'वैशाली की नगरवधू' आदि उपन्यासों की रचना की ।

स्वातंत्र्योत्तर काल में एक ओर व्यक्तिवादी, सामाजिक तथा मनोविश्लेषणवादी उपन्यास लिखे गये तो दूसरी ओर आँचलिक उपन्यास लेखन की शुरूआत भी हुई । प्रेमचन्दोत्तर साहित्य जनपदों से दूर जाता हुआ दिखाई दे रहा था । अतः इस दूरी को सीमित करने के लिए जनजीवन और आंचलिक परिवेश को चित्रित करने के लिए ऐसी कथाओं का सहारा लिया गया जो स्थानिक रंग तथा आंचलिक संस्कारों से सराबोर थी । हिंदी में शुद्ध आंचलिक उपन्यासों का सृजन बीसवीं सदी के छठें और सातवें दशक में तीव्र गति से हुआ । फिर भी इसकी पृष्ठभूमि पाँचवीं शती में भी मिलती है ।

''स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संपूर्ण विकास के लिए ग्रामीण क्षेत्र की ओर पहली बार ध्यान केन्द्रित किया गया । गाँवों के विकास के बिना देश का विकास संभव नहीं था । इस संबंध में अनेक उपन्यासकारों ने ग्रामीण पृष्ठभूमि पर उपन्यास लिखे ।'' [106]

'आंचलिक' उपन्यास के बारे में सुषमा प्रियदर्शिनी का विचार है कि - ''स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जब देश की एकाग्रता भंग हुई और देशोद्धार की अपेक्षा आत्मोद्धार की ओर चली, राष्ट्रीय एकता को फोड़कर विविध प्रदेशों, जातीय वर्गों और धर्मों, संस्कृति की अनेकता प्रखर वेग से प्रस्फुटित हुई, तब

हर किसी का ध्यान अपने प्रदेश, जाति-वर्ग, धर्म, संस्कृति संरक्षण और विकास की ओर इस दिशा में सचेष्ट प्रयत्न आरंभ हुए । आंचलिकता को पनपने के लिए यह स्थिति अत्यंत अनुकूल थी और आंचलिक उपन्यास की धारा पूर्ण वेग से चली ।'' [107]

फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' पहला आंचलिक उपन्यास माना जाता है । इसमें पूर्णिया जिले के ग्रामीण जीवन को दर्शाया है । रेणुजी ने उपन्यास की भूमिका में कहा है - ''इसमें फूल भी हैं, शूल भी हैं, धूल भी है, गुलाल भी है, कीचड़ भी है, चंदन भी, सुन्दरता है, कुरूपता भी । मैं किसी से दामन बचाकर नहीं निकल पाया । कथा की सारी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ साहित्य की दहलीज पर आज खड़ा हुआ है।'' [108]

प्रस्तुत कथन से स्पष्ट होता है कि पूर्णियाँ के सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्वरूप को उपन्यास में चित्रित किया गया है । 'परती परिकथा' में ग्रामीण अंचल की विसंगतियों, टूटन संघर्ष, नैतिकता आदि को स्पष्ट किया है । इसमें ऐसा गाँव है जिसमें राजनीतिक तिकड़मों के कारण सामाजिक मूल्य भी ध्वस्त होते हैं । डॉ. नगेन्द्र ने भी इस बात को स्वीकार करते हुए लिखा है –

"फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास ही सही अर्थों में 'आँचलिक' हैं। सत्य तो यह है कि 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' में ग्रामांचलों के जितने विशद

और सवाक् चित्र देखने को मिलते हैं, उतने अन्य तथाकथित आंचलिक उपन्यासों में नहीं ।”[109]

ग्रामांचल को आधार बनाकर राही मासूम रज़ा, शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, हिमांशु श्रीवास्तव आदि ने भी उपन्यास लिखे हैं । राहीजी का ‘आधा गाँव’ शिया मुसलमानों की ज़िंदगी पर लिखा गया पहला उपन्यास है । इसमें भारत-विभाजन के पहले और बाद की ज़िंदगी को उभारा गया है । शिवप्रसाद सिंह ने अपने उपन्यास ‘अलग-अलग वैतरणी’ में आधुनिकता-बोध को एकत्रित करने की कोशिश की है । इसमें उस परिवेश का चित्रण है, जिसमें नये-पुराने मूल्यों, नयी-पुरानी, पीढ़ी, भिन्न-भिन्न वर्गों और जातियों की टकराहट में सारे मूल्य गड्ड-मड्ड हो जाते हैं । रामदरश मिश्र कृत ‘पानी की प्राचीर’, ‘जल टूटता हुआ’ तथा ‘सूखता हुआ तालाब’ और हिमांशु श्रीवास्तव का ‘रथ के पहिये’ भी अपने-अपने ढंग से प्रभावशाली आंचलिक उपन्यास हैं।

इसके अतिरिक्त आंचलिक उपन्यासकारों में राजेन्द्र अवस्थी, विवेकीराय, उदयराज सिंह और सच्चिदानंद धूमकेतु भी उल्लेखनीय हैं।

आंचलिक उपन्यासों के अतिरिक्त इस काल में सामाजिक चेतना के उपन्यास, प्रयोगशील उपन्यास, आधुनिकता-बोध के उपन्यास साठोत्तरी उपन्यास आदि उपन्यासों का निर्माण हुआ ।

इस प्रकार प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यास में नई संचेतना के अनेक रूप ध्वनित हुए। आधुनिक युग की भीषण तथा भयावह घटनाओं ने भारतीय जीवन दर्शन को एक अचानक मोड़ दिया । नये बुनियादी प्रश्न निर्माण हुए और उनका समाधान आधुनिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में खोजने का प्रयास किया है । भारतीय जीवन के महानगर, नगर, कस्बों तथा गाँवों की जिन्दगी की अनेक समस्याएँ एवं उनके रूपों का यथार्थ धरातल पर चित्रण प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासों में हो रहा है । हिंदी साहित्य में सामाजिक उपन्यासों की पुष्ट परंपरा है । प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासकारों ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, आंचलिक, समाजवादी, मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना की है । इसके साथ-ही इन्होंने आधुनिकता के आह्वान को स्वीकारते हुए अपने उपन्यासों की रचना की है ।

प्रेमचन्दोत्तरकालीन परंपरा के प्रमुख उपन्यासकारों में इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, डॉ. देवराज, यशपाल, फणीश्वरनाथ रेणु, उदयशंकर भट्ट, प्रभाकर माचवे आदि उल्लेखनीय हैं जिनका संक्षिप्त में परिचय निम्नलिखित है।

- **प्रमुख उपन्यासकार**

1 जैनेन्द्र कुमार

जैनेन्द्र कुमार हिंदी उपन्यास साहित्य के प्रथम व्यक्तिवादी, मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। मनोविश्लेषणात्मक तत्वों के समावेश की दृष्टि से जैनेन्द्रजी का महत्वपूर्ण स्थान है। आलोच्यकाल में फ्रायड से प्रभावित होकर जिस कथा साहित्य की रचना की गई, उसकी पृष्ठभूमि जैनेन्द्र जी प्रेमचन्दकालीन युग में पहले ही प्रस्तुत कर चुके थे । उनके द्वारा रचित 'त्यागपत्र' (1937), 'कल्याणी' (1939), 'सुखदा' (1952), 'विवर्त' (1953) तथा 'व्यतीत' (1953) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ''त्यागपत्र'' अपने लघु कलेवर में भी महान् औपन्यासिक सम्भावनाओं को लिये हुए है। मानवीय संवेदना की इतनी गहराई व मार्मिकता अन्यत्र दुर्लभ है। सचमुच जो शास्त्र से नहीं मिलता वह ज्ञान आत्मव्यथा में मिल जाता है ।'' [110]

अपने विविध उपन्यासों में उन्होंने मानव मन का जो विश्लेषण प्रस्तुत किया है वह उनकी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचायक है ।

2 अज्ञेय

अज्ञेय दूसरे महान मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं, जो फ्रायड के मनोविज्ञान से प्रभावित कथाकार हैं । अज्ञेय ने मनोविज्ञान के सिद्धांतों को आधार बनाकर प्रस्तुत नहीं किया है, बल्कि उसके आलोक में जीवन जीते हुए मनुष्य की अनुभूतियों, बोधों, मनःस्थितियों, चेतन-अवचेतन स्थित सत्यों और उनके द्वन्द्वों उनसे परिचालित प्रभावित होते हुए आचारों-विचारों की गहराई

और सूक्ष्मता का विस्तार से विवरण किया है । अज्ञेय के प्रमुख उपन्यास हैं - ‘शेखरः एक जीवनी’ (1941), ‘नदी के द्‌वीप’ (1951), ‘अपने-अपने अजनबी’ (1961) आदि ।

3 इलाचन्द्र जोशी

इलाचन्द्र जोशी मूलतः कवि थे । साहित्य रचना के क्षेत्र में आने पर इन्होंने ‘चाँद’, सुधा, ‘विश्वव्यापी’, ‘विश्वामित्र’, ‘सम्मेलन पत्रिका’ आदि पत्र-पत्रिकाओं में लेखन-सम्पादन किया । इनके उपन्यासों में ‘संन्यासी’ (1941), ‘पर्दे की रानी’ (1941), ‘प्रेम और छाया’ (1945), ‘निर्वासित’ (1946), ‘जहाज का पंछी’ (1956) आदि प्रमुख हैं। उपन्यास रचना के क्षेत्र में जोशीजी का दृष्टिकोण मनोविश्लेषणात्मक है । जोशीजी ने अपने उपन्यासों में स्थूल घटनाओं के बदले मानवमन की सूक्ष्म घटनाओं के निरूपण में विशेष दिलचस्पी दिखाई है । मानवमन में चलनेवाले संघर्ष को यथार्थ रूप में चित्रित किया है ।

4 डॉ. देवराज

डॉ. देवराज का वास्तविक नाम श्री नन्दकिशोर गुप्त है । नये हस्ताक्षरों में डॉ. देवराज हिंदी के एक जाने-माने मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। आलोच्य काल में उनके चार उपन्यास आते हैं - ‘पथ की खोज’ (1951), ‘बाहर-भीतर’ (1954), ‘रोड़े और पत्थर’ (1958), ‘अजय की डायरी’ (1960) । उनके उपन्यासों

में वैयक्तिक चेतना का सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में बौद्धिकता से आग्रहीत तथा दार्शनिक जटिलता से युक्त सूक्ष्म निरूपण किया गया है ।

5 यशपाल

प्रेमचन्द के पश्चात यशपाल और जैनेन्द्र दो सशक्त प्रमुख उपन्यासकार हमारे सामने आए । यशपालजी ने अनेक कहानियाँ, निबंध और उपन्यासों की रचना की है। इनके द्वारा लिखित उपन्यासों में 'दादा कामरेड' (1941), 'देशद्रोही' (1943), 'पार्टी कामरेड' (1947), 'मनुष्य के रूप' (1949), 'दिव्या' (1954), 'झूठा सच' (दो भाग) (1959) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । यशपाल के उपन्यासों में देश की राजनीतिक क्रांति के अतिरिक्त समाज के आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक पक्षों का मनोवैज्ञानिक चित्रण यथार्थवादी पृष्ठभूमि पर किया गया है ।

6 फणीश्वरनाथ 'रेणु'

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों से आंचलिक उपन्यास की वास्तविक शुरुआत मानी जाती है । इनके उपन्यासों में ग्रामीण अंचल की कथाओं, आचार-विचार, रीति-नीति, राजनीतिक स्थिति आदि का सुंदर वर्णन है । इनके मुख्य आंचलिक उपन्यास हैं - ''मैला आँचल'' (1954), परती परिकथा (1957) आदि ।

7 उदयशंकर भट्टः

उदयशंकर भट्ट का जन्म इटावा में हुआ था । इन्होंने काशी, पंजाब तथा कलकत्ता में उच्च शिक्षा प्राप्त की थी । आरंभ से ही साहित्यिक वातावरण में रहने के कारण साहित्य रचना के प्रति अनुराग हुआ और ब्रजभाषा में काव्य रचना आरंभ की । इन्होंने काव्य तथा नाटक भी लिखे । इसके अतिरिक्त इनके द्वारा रचित उपन्यासों में 'वाह जो मैंने देखा' (1942) उनकी प्रथम रचना है । जो सन् 1956 में 'एक नीड़ दो पक्षी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था । उनका अगला उपन्यास 'नये मोड़' (1956) है जिसका प्रकाशन सन् 1960 में 'डॉ. शेफाली' शीर्षक से हुआ था। इनके अतिरिक्त भट्टजी के उपन्यासों में 'सागर लहरें और मनुष्य' (1955), 'लोक परलोक' (1958), 'शेष अशेष' (1960) आदि उल्लेखनीय है । उनके उपन्यासों में विभिन्न सामाजिक विसंगतियों, धार्मिक जीवन की मान्यताओं और उसके विडम्बनात्मक स्वरूप, नारी जीवन की समस्याएँ आदि सामाजिक यथार्थ के विविध पक्षों का उद्घाटन सुधारपरक दृष्टिकोण से किया गया है ।

8 प्रभाकर माचवे

प्रभाकर माचवेजी साहित्य के पंडित एवं एक विद्वान आलोचक हैं । उन्होंने भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन और साहित्य का गंभीर अध्ययन किया है और सामयिक समस्याओं पर विचार किया है । इन्होंने अनेक लघु उपन्यास लिखे हैं, जिनमें 'परन्तु' (1940), 'साँचा' (1955) आदि उल्लेखनीय हैं ।

9 नागार्जुन

आंचलिक उपन्यास लेखकों में नागार्जुन ने पर्याप्त ख्याति प्राप्त की है । 'रतिनाथ की चाची' (1948), 'बलचनमा' (1952), 'नई पौध' (1953), 'बाबा बटेसरनाथ' (1954) आदि उपन्यास इन्होंने हिंदी साहित्य को दिए । नागार्जुन के उपन्यास मूलतः तो समाजवादी ही है किन्तु उनकी कथा एक अंचल विशेष से ली गई होने के कारण इन्हें आंचलिक कहा गया है ।

10 रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' (1915)

श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का जन्म जिला फतेहपुर में हुआ था । पारिवारिक वातावरण की अनुकूलता के कारण इन्हें प्रारंभ से ही साहित्यिक अभिरुचि थी । इन्होंने अनेक कहानी संग्रहों, कविता संग्रहों तथा निबंध संग्रहों की रचना करने के साथ ही अनेक उपन्यासों की रचना भी की है । इनके द्वारा लिखे गये उपन्यासों में 'चढ़ती धूप' (1945), 'नई इमारत' (1946), 'उल्का' (1947), 'मरुप्रदीप' (1951) आदि उल्लेखनीय है । उनके उपन्यास विचार प्रधान है तथा उनमें राष्ट्रीय आन्दोलन, साम्प्रदायिक वैमनस्य नारी जीवन की विडम्बना, विधवा विवाह आदि समस्याओं के संदर्भ में रूढ़िवादिता तथा आधुनिकता की विस्तार से विवेचना प्रस्तुत की गई है ।

11 प्रतापनारायण श्रीवास्तवः

श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तवजी ने प्रेमचन्द युग से उपन्यास लिखना प्रारंभ किया था । और आलोच्य युग में भी इन्होंने अनेक उपन्यास लिखे । 'विजय' (1937), 'विकास' (1941), 'बयालीस' (1948), 'वेदना' (1960) आदि इनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं। उनके उपन्यासों में यदि एक ओर भारतीय उच्चवर्गीय समाज की पारिवारिक, नैतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं की विवृत्ति हुई है तो दूसरी ओर उनमें गंभीर और यथार्थात्मक पृष्ठभूमि पर भारतीय स्वतंत्रता, जातीय वैमनस्य तथा राजनीतिक समस्याओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है ।

12 वृन्दावनलाल वर्मा

वृन्दावनलाल वर्मा प्रेमचन्दयुगीन लेखक हैं। आलोच्य काल में भी इन्होंने अनेक सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यास लिखे । इनके सामाजिक उपन्यासों में 'अचल मेरा कोई' (1948), 'सोना' (1952), 'अमर बेल' (1953) आदि, एवं ऐतिहासिक उपन्यासों में 'झाँसी की रानी' (1946), 'कचनार' (1947), 'टूटे काँटे' (1954), 'भुवन विक्रम' (1957) आदि उल्लेखनीय हैं। मेरे शोध-विषय के लेखक यही हैं अतएव इन पर विस्तार से चर्चा आगे की जाएगी।

13 चतुरसेन शास्त्रीः

शास्त्रीजी के उपन्यासों में आदर्शवादी दृष्टि से भारत के स्वर्णिम अतीत का चित्रण उपलब्ध होता है । आलोच्य काल में उनके 'वैशाली की नगरवधू' (दो

भाग) (1948), 'नरमेघ' (1949), 'रक्त की प्यास' (1951), 'दो किनारे' (1951), 'अपराजित' (1952), 'अदल-बदल' (1953), 'आलमगीर' (1954), 'सोमनाथ' (1954), 'गोली' (1957), 'सोना और खून' (दो भाग) (1958), 'बगुला के पंख' (1959), 'खग्रास' (1961), 'मोती' (1962) आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं । इनके अतिरिक्त शास्त्री जी की अन्य अनेक औपन्यासिक रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं जो अपूर्ण और अप्रकाशित हैं जिनमें 'अपराधी', 'ईदो', 'आर्य चाणक्य' आदि का उल्लेख किया जा सकता है । आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ने अपने उपन्यासों में पौराणिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक विषय वस्तुओं पर आधारित भिन्न-भिन्न कथानकों को प्रस्तुत किया है । उनके उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण भी मुख्य रूप से पाया जाता है ।

14 डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी (1907)

संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा के प्रकाण्ड विद्वान, भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के मर्मज्ञ और हिंदी के एक सुधी आलोचक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का इस क्षेत्र का योगदान सदैव उल्लेखनीय रहेगा । सन् 1949 में लखनऊ विश्वविद्यालय ने डी.लिट् की सम्मानित उपाधि प्रदान की तथा सन् 1950 में भारत सरकार ने उन्हें पद्म विभूषण की उपाधि से सम्मानित किया । द्विवेदी जी द्वारा लिखित उपन्यासों में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (1947),

'चारू चन्द्रलेख' (1963) तथा 'पुनर्नवा' आदि उल्लेखनीय हैं। ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में प्रयोगगत नवीनता की दृष्टि से उनके उपन्यासों का विशिष्ट महत्व है ।

15 राहुल सांकृत्यायन (1893-1963)

राहुल सांकृत्यायन का वास्तविक नाम केदारनाथ पाण्डेय था । आगे चलकर बौद्ध धर्म अपनाने के बाद उन्होंने अपना नाम राहुल सांकृत्यायन रखा । वे जीवन भर देश-विदेश के अनेक स्थलों का भ्रमण करते रहे। इंग्लैंड, तिब्बत, कोरिया, जापान, रूस, ईरान, चीन तथा लंका आदि देशों का उन्होंने अनेक बार भ्रमण किया था । इतिहास, पुरातत्व, स्थापत्य, राजनीति तथा भाषा शास्त्र आदि के क्षेत्रों में उनकी विशेष रुचि थी ।

राहुलजी ने साहित्य रचना के क्षेत्र में सन् 1927 से कार्य आरंभ किया और सौ से अधिक ग्रंथों का प्रकाशन किया । उनके द्वारा लिखे गये उपन्यासों में 'जीने के लिए' (1940), 'सिंह सेनापति' (1944), 'मधुर स्वप्न' (1949) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनके अधिकतर उपन्यास ऐतिहासिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर लिखे गये हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में उन्होंने सांस्कृतिक तत्त्व को प्रधानता दी है और सामाजिक उपन्यासों में राजनीतिक विचारों की प्रधानता है।

16 राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने अपने उपन्यासों में आदर्शवादी जीवन दर्शन की पृष्ठभूमि में यथार्थात्मकता और भावनात्मकता का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है । उनके द्वारा लिखित उपन्यासों में 'राम-रहीम' (1937), 'गाँधी टोपी' (1938), 'सावनी सभा' (1938), 'पुरुष और नारी' (1940), 'टूटा तारा' (1941) आदि उल्लेखनीय हैं। जीवन की विविध सामाजिक समस्याओं, धार्मिक अन्धविश्वास, नारी हृदय की रहस्यात्मकता तथा राष्ट्रीय आन्दोलन आदि विभिन्न विषयों पर उन्होंने अपने उपन्यासों में विचार प्रस्तुत किये हैं ।

17 भगवतीचरण वर्मा

भगवतीचरण वर्मा प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासकार हैं। आलोच्य काल में भी इन्होंने अनेक उपन्यास लिखे हैं । वर्मा जी द्वारा रचित उपन्यासों में 'तीन वर्ष' (1946), 'अपने खिलौने' (1957), 'भूले बिसरे चित्र' (1959), 'वह फिर नहीं आयी' (1960) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

18 डॉ. रांगेय राघव

हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में विविध प्रवृत्तियों के विकास में डॉ. रांगेय राघव का महत्वपूर्ण योगदान है । उन्होंने विभिन्न विषयक उपन्यासों की रचना की । उनके उपन्यासों में 'विषाद मठ' (1946), 'मुर्दों का टीला' (1948), 'चीवर' (1951), 'अँधेरे के जुगनू' (1953), 'रत्ना की बात' (1954) आदि उल्लेखनीय हैं।

डॉ. रांगेय राघव के उपन्यासों में समाज के सभी वर्गों के पात्रों के माध्यम से मानव जीवन की विविध समस्याओं का सम्पूर्णात्मक रूप से निरूपण किया गया है । उन्होंने सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक सभी प्रकार की विषमताओं का अपने उपन्यासों में सूक्ष्म विश्लेषण किया है ।

19 राजेन्द्र यादव

युगीन उपन्यासकारों में श्री राजेन्द्र यादव का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । उनके लिखे उपन्यास 'सारा आकाश', 'शह और मात', 'कुलटा', 'अनदेखे अनजान पुल', 'उखड़े हुए लोग' आदि उल्लेखनीय हैं। समकालीन जीवन की वैयक्तिक पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं का चित्रण इन कथा कृतियों की प्रमुख विशेषता है ।

उपरोक्त के अतिरिक्त भी इस युग के अन्य प्रमुख उपन्यास लेखकों और उनके उपन्यासों में छविनाथ पाण्डेय कृत 'माँ की ममता', देवीप्रसाद धवन 'विकल' के 'अपराजिता', 'आगामीर', 'तपस्या', 'पाखंडी' और 'सीधे सादे रास्ते', 'गौरीशंकर' 'धूमकेतु' कृत 'चन्द्रगुप्त मौर्य', 'चन्द्र अशोक', 'चौला देवी' तथा 'जल बिंदु', श्रीराम शर्मा कृत 'आँधी', उठते कदम, कल्पना के आँसू, चित्रकार, झरोखे, टेढी-रेखाएँ, रास्ते का मोड़ आदि, देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'ब्रह्मपुत्र', राजेश्वर प्रसाद सिंह लिखित 'अभिनय', 'आदमी और जिन्दगी', 'सुलगती आग', 'रहस्यमयी',

'मृत्युकिरण' आदि, देवीदयाल चतुर्वेदी कृत 'अनुष्ठान' और 'उड़ते पत्ते' तथा रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' लिखित 'निर्देशक', 'संशय' तथा 'चलचित्र' आदि उल्लेखनीय हैं। प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यास के क्षेत्र में मनोविश्लेषणात्मक तत्वों का विवेचन अपेक्षाकृत अधिक हुआ तथा इस युग के उपन्यासकारों ने हिंदी उपन्यास साहित्य को विशिष्ट स्तरीयता प्रदान की है ।

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ295
2. श्रीवास्तव शिवनारायण - हिंदी उपन्यास, पृ.18
3. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.298
4. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.299
5. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.299
6. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.301
7. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.301
8. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.301
9. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.229
10. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.306
11. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.317
12. टंडन, प्रताप नारायण – हिंदी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास, पृ.510
13. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.323
14. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.326
15. शर्मा, वासुदेव – हिंदी साहित्य का विकास, पृ.195
16. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.332,333
17. डॉ. नगेन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.472
18. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.325
19. डॉ. बच्चन सिंह – आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.83

20. वर्मा, डॉ. धीरेन्द्र - हिंदी गद्य का विकास, पृ.108

21. डॉ. बच्चन सिंह – आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.155

22. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.490

23. डॉ. बच्चन सिंह – आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.155

24. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.484

25. वर्मा, डॉ. धीरेन्द्र - हिंदी गद्य का विकास, पृ.112

26. अमृतलाल नागर का उपन्यास में नारी विमर्श, पृ.123

27. टंडन – डॉ. प्रताप नारायण – हिंदी उपन्यास कला, पृ.9,10

28. वसु, सं, नगेन्द्र नाथ - हिंदी विश्वकोश भाग 2 , पृ.323

29. संपादक श्याम सुंदरदास - हिंदी शब्द सागर भाग 2, पृ.88

30. देसाई, डॉ. पारूकान्त – हिंदी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास, पृ.16

31. देसाई, डॉ. पारूकान्त – हिंदी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास, पृ.16

32. द्विवेदी, हजारी प्रसाद – हिंदी साहित्य – उद्भव और विकास, पृ.237 ,238

33. देसाई, डॉ. पारूकान्त – हिंदी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास, पृ.18

34. देसाई, डॉ. पारूकान्त – हिंदी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास, पृ.18

35. सिंह, डॉ. राम शोभित प्रसाद – हिंदी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर काल, 22

36. सिंह, डॉ. राम शोभित प्रसाद – हिंदी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर काल, पृ.18

37. सिंह, डॉ. राम शोभित प्रसाद – हिंदी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर काल, पृ.22

38. प्रेमचन्द – कुछ विचार, पृ.46

39. सिंहल, डॉ. शशिभुषण – हिंदी उपन्यासः बदलते सन्दर्भ, पृ.13

40. जैन, नेमिचन्द – अधूरे साक्षात्कार, वाणी प्रकाशन, पृ.1

41. टंडन – डॉ. प्रताप नारायण – हिंदी उपन्यास कला, पृ.41

42. राय बाबू गुलाब- काव्य के रूप, पृ.155

43. डॉ. गोविन्द त्रिगुणयत – शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, पृ.412

44. टंडन – डॉ. प्रताप नारायण – हिंदी उपन्यास कला, पृ.180, 181

45. कैलाश प्रसाद – प्रेमचन्द पूर्व हिंदी उपन्यास - हिंदी साहित्य, पृ.41

46. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.495

47. डॉ. सुषमा प्रियदर्शिनी - 'हिंदी उपन्यास', राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ.142

48. देसाई, डॉ. पारूकान्त – हिंदी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास, पृ.72

49. देसाई, डॉ. पारूकान्त – हिंदी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास, पृ.73

50. मिश्र, रामदरश – हिंदी उपन्यास के सौ वर्ष, पृ.112

51. चतुर्वेदी डॉ. महेन्द्र - हिंदी उपन्यास एक सर्वेक्षण, पृ.8

52. मिश्र, रामदरश – हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ.85

53. मिश्र, रामदरश – हिंदी उपन्यास के सौ वर्ष, पृ.98

54. सिंह, डॉ. राम शोभित प्रसाद – हिंदी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर काल, 358

55. राय बाबू गुलाब- काव्य के रूप, पृ.180

56. डॉ. सत्येन्द्र - समीक्षा के सिद्धान्त, पृ.137

57. डॉ. गोपालराय–हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ.45

58. डॉ. नगेन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.159

59. देसाई, डॉ. पारूकान्त – हिंदी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास, पृ.16

60. डॉ. बेचन – आधुनिक हिंदी उपन्यासः उद्भव और विकास, पृ.44

61. श्रीवास्तव शिवनारायण - हिंदी उपन्यास, पृ.18

62. मिश्र, रामदरश – हिंदी उपन्यास के सौ वर्ष, पृ.10

63. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.321

64. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.326

65. श्री कृष्णलाल- आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास, पृ.285

66. द्विवेदी, डॉ. हजारीप्रसाद – हिंदी साहित्य, पृ.180

67. शर्मा, ओमप्रकाश – हिंदी उपन्यास और समाज, पृ.20

68. शर्मा, ओमप्रकाश – हिंदी उपन्यास और समाज, पृ.20

69. शर्मा, ओमप्रकाश – हिंदी उपन्यास और समाज, पृ.21

70. रघुवंशी, डॉ. महेन्द्र - छठें दशक के हिंदी उपन्यासों में लोक संस्कृति, पृ.10

71. शर्मा, ओमप्रकाश – हिंदी उपन्यास और समाज, पृ.19

72. पाण्डेय, रतनाकर – हिंदी साहित्यः सामाजिक चेतना, पृ.72,73

73. मिश्र, संकठाप्रसाद, द्विवेदी युगीन साहित्य समीक्षा, पृ.33

74. डॉ. स्वर्णलता – स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, पृ.8

75. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.358

76. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.356,357

77. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.357

78. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.357

79. भट्ट, पंडित बालकृष्ण - सौ अजान एक सुजान, पृ.123

80. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.357

81. देसाई, डॉ. पारूकान्त – हिंदी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास, पृ.73

82. वर्मा, डॉ. धीरेन्द्र - हिंदी गद्य का विकास, पृ.11

83. डॉ. लक्ष्मीकान्त वाष्णेय – हिंदी उपन्यास – उपलब्धियाँ, पृ.10

84. शर्मा, ओमप्रकाश – हिंदी उपन्यास और समाज, पृ.22

85. डॉ. नगेन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.499

86. डॉ. बच्चन सिंह – आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.235

87. कौहली, डॉ. नरेन्द्र - हिंदी उपन्यास सृजन और सिद्धान्त, पृ.43

88. डॉ. नगेन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.549

89. डॉ. बेचन – आधुनिक हिंदी उपन्यासः उद्भव और विकास, पृ.67

90. प्रेमचन्द – कुछ विचार, पृ.95

91. शुक्ल, औम - हिंदी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास, पृ.116

92. डॉ. नगेन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.561

93. प्रेमचन्द – गबन, पृ.236

94. डॉ. तहसीलदार दूबे – स्वातन्त्रोत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य में शिल्पविधि का विकास, पृ.39

95. डॉ. नगेन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.558

96. वैयारी, लक्ष्मीलाल, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, पृ.325

97. अग्रवाल, डॉ. भारत भूषण – हिंदी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव, पृ.96

98. प्रसाद, शियाराम शरण - वृन्दावनलाल वर्मा : साहित्य और समीक्षा, पृ.244

99. पाण्डेय, डॉ. गोपालजी – हिंदी उपन्यास में मनोभावों का स्वरूप, पृ.30

100. डॉ. नगेन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.688

101. डॉ. बेचन – आधुनिक हिंदी उपन्यासः उद्भव और विकास, पृ.118

102. डॉ. नगेन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.688,689

103. मिश्र, रामदरश – हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ.91

104. डॉ. नगेन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.691

105. मिश्र, रामदरश – हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ.90

106. रघुवंशी, डॉ. महेन्द्र - छठें दशक के हिंदी उपन्यासों में लोक संस्कृति, पृ.32

107. डॉ. सुषमा प्रियदर्शिनी - हिंदी उपन्यास, पृ.165

108. रेणु फणीश्वरनाथ – मैला आंचल, भूमिका से

109. डॉ. नगेन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.697

110. जैनेन्द्रकुमार – त्यागपत्र, भूमिका से